तन्त्रागम शब्द एवं पुराण शब्द की व्युत्पत्ति

अनादिकाल से गुरुपरम्परा द्वारा आया हुआ ग्रन्थ (शास्त्र) सन्दर्भ को 'आगम' कहते है। 'आगम' शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु से **'आगम' शब्द** निष्पन्न होता है।[१]

'आगम' और 'तन्त्र' शब्दों की व्युत्पत्ति एवं इनकी ऐतिहासिक प्रवृत्ति के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि ये दोनों शब्द वर्तमान में भारतीय वाङ्मय की एक विशेष शाखा रूढ के रूप में है,जो पहले 'आगम' और बाद में 'तन्त्र' शब्द से आविर्भूत हुए।

शिव और शक्ति द्वारा प्रश्नोत्तर के माध्यम से 'तन्त्र' का आविर्भाव माना गया है। स्वच्छन्द 'तन्त्र' में स्पष्ट ही निर्देश मिलता है कि सदाशिव ने स्वयं गुरु और शिष्य के रूप में अवस्थित होकर 'तन्त्र' की अवतरणा की है।[१]

प्रो.विण्टरनित्ज के कथनानुसार 'आगम' शैवों के,'तन्त्र' शाक्तों के तथा 'संहिताएँ' वैष्णवों के पवित्र ग्रन्थ हैं।[१] 'तन्त्र' का अर्थ है विस्तार। तनु विस्तारे धातु से ष्ट्रन प्रत्यय के द्वारा 'तन्त्र' शब्द निष्पन्न होता है। वेद, पुराण, स्मृति, दर्शनशास्त्र, रामायण, गीता और 'तन्त्रशास्त्र' को हम समस्त भारतीय धार्मिक-दार्शनिक साहित्य का वर्गीकरण करें तो हमें इसमें अन्तर्भूत ये सभी ग्रन्थ समुदाय मिलेगें।'तन्त्रशास्त्र' सर्वप्रथम अथर्ववेद में पाया गया और उसके बाद भारत का कोई भी साहित्य अस्पृष्ट नहीं रह सका। तन्त्रशास्त्र की सर्वव्यापी जड़ों से सारे भारतीय वाङ्मय ने जल पिया है। 'तन्त्र' से पूर्णतया मुक्त किसी भी भारतीय साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। 'तन्त्र' अपने अभिधेयार्थ 'विस्तार' से भी इसी तथ्य को द्योतित करता है।

---

[१] तन्त्रागम विशेषाङ्क पृ.७१

[१] स्वच्छन्द तन्त्र.१/१२

[१] प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास. (हिन्दी संस्करण) भा.१ख.२ पृ.२४५ मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी सन् १९६६

'तन्त्र प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रवाये परिच्छदे'।[1]

सन् १९२१ में प्रकाशित चार्ल्स ईलियट के ग्रन्थ में भागवतों और पाशुपतों के विषय में प्राप्त होता है कि तन्त्र,आगम और संहिताओं ने अपने-अपने प्रतिपाद्य विषय को चार-चार भागों में बाटा था। ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या।[2]

तन्त्र की उत्पत्ति एवं आगमनिगम की उत्पत्ति शास्त्र के अनुसार-

निगमादागमो जातः आगमाद् यामलो भवेत्।

यमलात् वेदसञ्जातं वेदाज्जातं पुराणकम्।

पुराणात् स्मृति सञ्जातं स्मृतेः शास्त्राणि यानि च।

रुद्रयामल तन्त्र के अनुसार शास्त्र में आगम की व्याख्या करते हुए कहा गया है- शिवमुख से आगत गिरिजामुख में गत और वासुदेव सम्मत होने से आगम कहा जाता है। आगतम्,गतम्,मतम् इन दोनों पदों के प्रथम तीन अक्षरों के आधार पर ही आगम की संज्ञा दी गयी है।

आगतः शिव वक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजानने।

मतः श्री वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।।[3]

आगम के साथ निगम का भी निर्देश मिलता है, गिरिजा के मुख से निर्गत शिवकर्ण में गत वासुदेव सम्मत है, अतः यह निगम है।

निर्गतो गिरिजावक्त्रात् गतश्च गिरिशश्रुतिम्।

मतश्च वासुदेवस्य निगमः परिकथ्यते।[4]

वाचस्पति मिश्र जी के मतानुसार आगम शब्द की परिभाषा –

आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदय निःश्रेयसोपायाः स आगमः।

---

[1] अमरकोष का.३श्लो.१८४

[2] हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म,लन्दन भा.२,पृ.१८८-८९

[3] रुद्रयामल तन्त्र.पृ.२

[4] शाक्तप्रमोद एवं शिवताण्डव.पृ२८

तन्त्रशास्त्र और तान्त्रिक साधना गुरु शिष्य परम्परा क्रम में चलती आ रही है। वर्ण परम्परा से उपदेश क्रम में तन्त्र पृथ्वी में सम्प्राप्त होता है **'कर्णोत्कर्णोपदेशेन- सम्प्राप्तमवनीतलम्''**

तन्त्रशास्त्र से विहित साधना 'शक्ति' की साधना है। **'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानमनेन इति तन्त्रम्'**। ज्ञान का विस्तार होने के कारण ही इसे तन्त्र कहा जाता है। कामिकामों के अनुसार यह शास्त्र तत्त्व एवं मन्त्र सहित विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कर जीव का त्राण करता है, इसलिए इसे तन्त्र कहा जाता है।

'तनोति विपुलानर्थान् तन्त्रमन्त्रसमन्वितान्।

त्राणञ्च कुरुते यस्मात्तन्त्रमित्यभिधीयते।[१]

तन्त्रशास्त्र का अपर पर्याय 'साधनाशास्त्र' या 'कर्मशास्त्र' है। इसका प्रणेता कोई नहीं है वरन् इनका अनुस्मरणकर्ता ही है। 'तन्त्रशास्त्र' को प्रधान रूप से आगम, यामल, और तन्त्र ये तीन विभाग किये जा सकते है।[२]

सृष्टि, प्रलय, देवताओं की विधिपूर्वक अर्चना, मन्त्रों की साधना पुरश्चरण षट्कर्मसाधन एवं चतुर्विध ज्ञान योग इन सात लक्षणों से समन्वित शास्त्र को 'आगम' कहा जाता है।

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम्।

साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।

षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः।

सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तमागमं तद् विदुर्बुधाः।।[३]

---

[१] शाक्तप्रमोद एवं शिवताण्डव.पृ२८

[२] तन्त्रशास्त्रन्तु प्रधानतस्त्रिधा विभक्तम् आगम-यामल-तन्त्र भेदतः।(मातृ.भू.पृ.२)

[३] भारतीय तन्त्र साधना और सिद्धान्त भूमिका पृ.२

अभिनवगुप्त-इह तावत्समस्तोऽयं व्यवहारः पुरातनः।

प्रसिद्धिमनुसन्धाय सैव चागम उच्यते।[१]

परमेश्वर तच्छक्तिसदाशिवे शानान्त श्रीकण्ठादिरूपं पारस्परं तत आगतम्।[२]

आगम, निगम, यामल और वेद का स्वरूप सर्वोल्लास 'तन्त्र' में इस प्रकार बताया गया है- निगमात्मा महेशानि ! परमात्मागमो ध्रुवम्।

जीवात्मा यामलं प्रोक्तं ब्रह्मात्मा वेदरूपकम् (सर्वोल्लास तन्त्र) तन्त्रादि शास्त्रों के विषय में जो तान्त्रिकी दृष्टि है कि भगवान शिव के पाँचों मुखों से पञ्चाम्नाय उत्पन्न हुए।अन्य शास्त्रों की उत्पत्ति इस प्रकार से है-ब्रह्मयामल-सामवेद, रुद्रयामल-ऋग्वेद, विष्णुयामल-यजुर्वेद, शक्तियामल-अथर्ववेद। ब्रह्मयामल सम्भूतं सामवेदमतं शिवे। रुद्रयामलसञ्जातं ऋग्वेदं परमं महत्।[३]

कुलार्णव तन्त्र के अनुसार जिस शास्त्र में आचार का वर्णन हो एवं यथा विधि दिव्य गति की प्राप्ति का साधन निरूपित हो, और महान् आत्मतत्त्व का वर्णन हो-उसको 'आगम' कहा जाता है।

आचारकथनाद्दिव्यगति-प्राप्ति-विधानतः।

महात्मतत्त्वकथनादागमः कथितः प्रिये।।[४]

युगानुसार शास्त्रों के चयन के विषय में तान्त्रिकदृष्टि इस प्रकार है-

सत्ये श्रुत्युक्तकर्माणि त्रेतायां स्मृतिसम्मतम्।

द्वापरे च पुराणानि कलावागमसम्मतम्।[५]

---

[१] तन्त्रालोक ३५/१

[२] स्वच्छन्द तन्त्र पटल ४

[३] सर्वोल्लास तन्त्र पटल १

[४] कुलार्णवतन्त्रसप्तदशोल्लासः श्लो.४३

[५] सर्वोल्लास तन्त्र ३

तन्त्र साधना की दृष्टि से शक्ति-साधना आत्मसाक्षात्कार भी है-'आत्मन्नामान्न परं विद्यते'[१] अपर ज्ञान ही 'तन्त्र' (शिव की ज्ञानात्मिका शक्ति के दो रूप) हैं-पर एवं अपर यह अपर ज्ञान ही सात्वत संहिता के दृष्टि में 'तन्त्र' है।

सामान्यतः लोग तन्त्रों से तात्पर्य लगाते हैं-शक्ति (काली देवी) की पूजा, मुद्रायें, मन्त्र, मण्डल, दक्षिणाचार, वामाचार, पञ्चमकार, एवं ऐन्द्रजालिक क्रियायें।[२]

तन्त्र शब्दका प्रयोग वेदों से लेकर उत्तरवर्ती साहित्य तक सर्वत्र हुआ है।

ऋग्वेद में 'तन्त्र' शब्द का प्रयोग 'करघा' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[३]

इसी प्रकार अथर्ववेद में ''तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्''।[४]

तैतरीय ब्राह्मण में उसी अर्थ में 'तन्त्र' का प्रयोग हुआ है।[५]

पाणिनि के सूत्र 'तत्रादचिरापहृते' में 'तन्त्रक'[६] (तत्काल करघे से उतारा गया वस्त्र)

आपस्तम्भ श्रौत सूत्र में 'तन्त्र' का अर्थ है 'कई भागों वाली विधि'।[७]

शांख्यायन श्रौ.सू. 'तन्त्र' वहीं है जो एक बार जोने पर (किये जाने पर) बहुत से अन्य कर्मो का उपयोग सिद्ध करता है।[८]

---

[१] परशुरामकल्पसूत्र-२८
[२] धर्मशास्त्र का इ.)डॉ.वा.काणे
[३] ऋग्वेद १०/७/९
[४] अथर्ववेद १०/७/४२
[५] तैतरीय ब्राह्मण २/५/५/३
[६] पाणिनि के ५/२/७०
[७] आपस्तम्ब श्रौत सूत्र. १/१५/१
[८] शांख्यायन श्रौ.सू. १/१६/६

महाभाष्यकार पाणिनि ने सूत्र एवं वार्तिक को उदाहरण के रूप में ग्रहण किया है जिनका तात्पर्य है जिसने सभी तन्त्रों का अध्ययन कर लिया हो जिसने दो तन्त्रों का अध्ययन कर लिया हो यहाँ पर 'तन्त्र' का अर्थ संभवतः सिद्धान्त है।[१]

याज्ञवल्क्य स्मृति में 'तन्त्र' वावैश्वदेविकम् में प्रयुक्त तन्त्र शब्द उसी अर्थ में प्रयोग किया गया है जो शांख्यायन श्रौत सूत्र में किया गया है।[२]

अर्थशास्त्र के १५वाँ अधिकरण में तन्त्र युक्ति अर्थात् किसी शास्त्र की व्याख्या मे मुख्य विधियाँ एवं सिद्धान्तों का वर्णन है। चरक संहिता के सिद्धिस्थान, में ३६तन्त्र युक्तियों का वर्णन प्राप्त होता है।[३]

वेदान्त सूत्र भाष्य में कई स्थानों पर तन्त्र शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है-सांख्य सिद्धान्त शङ्कराचार्य ने सांख्य तन्त्र एवं पूर्वमीमांसा को प्रथमतन्त्र कहा है।[४]

कालिका पुराण में उशना एवं बृहस्पति के राजनीति विषय ग्रन्थों को तन्त्र कहा गया है।[५] एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण को तन्त्र कहा गया है।

आ.श्रौ. सू. में उदिते आदित्ये पौर्णमास्यास्तन्त्रं प्रक्रमयति प्रागुदयादमावास्यायाः टीकाकार-अंगसमुदायस्तन्त्रम् तत्प्रक्रमयति यजमानोऽध्वर्युणा।[६] तन्त्र लक्षणम्।।

भारतीय चिन्तन में आगम और निगम का महत्वपूर्ण स्थान है। जो शास्त्र अपौरुषेय हैं वे निगम कहलाते हैं,और जो किसी आप्त पुरुष, ईश्वर, ऋषि या

---

[१] पाणिनि सूत्र ४/२/६० एवं वार्तिक सर्वसादेर्द्विगोश्चलः पर 'सर्वतन्त्र'एवं द्वितन्त्रः

[२] याज्ञवल्क्य स्मृति के १/२२८

[३] चरकसंहिता.सिद्धिस्थान,अ. १२/४०-४५

[४] वेदान्त सूत्र २/२/१,२/१/१,३/३/५३

[५]कालिकापुराण. ८७/१३०

[६] आपस्तम्ब श्रौत सूत्र. १/१५/१

देवता के द्वारा कहे गये हैं वे आगम कहे जाते है।सामान्य रूप से सभी शास्त्रों को तन्त्र शब्द से कहा जाता है।

सांख्य दर्शन का दूसरा नाम कपिलतन्त्र या षष्टितन्त्र है,वेदान्त दर्शन का नाम उत्तरतन्त्र है,न्यायदर्शन का नाम गौतमतन्त्र है, मीमांसादर्शन का नाम पूर्वतन्त्र है। शङ्कराचार्य ने बौद्धक्षणभङ्गवाद को वैनाशिकतन्त्र के नाम से निर्देश किया है। बृहत्संहिता के ज्योतिषशास्त्र में विभाग विशेष को तन्त्र कहा गया है।[१]

भारत में तान्त्रिक आचार कितने दिनों से प्रवर्तित हुआ है यह कहना कठिन है, किन्तु अनुसन्धान करने से यह अवगत होता है कि विभिन्न अनार्य जातियों में तान्त्रिक आचारों के अनुरूप आचार अतिशय प्राचीन है। अनार्यों से भी आर्यो ने इस विषय में विशेष प्रेरणा ग्रहण की है और इसको वैदिक संस्कृति के अनुसार नियमबद्ध किया है।[२]

कतिपय तान्त्रिक अनुष्ठानों की सूचना प्रागैतिहासिक युग में भी भारत में मिलती है। कतिपय लिङ्ग मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। श्यामशास्त्री के मत में ख्रीष्ट के जन्म से हजार वर्ष पूर्व ही भारत में तान्त्रिक अनुष्ठानों का वर्णन प्राप्त होता है।[३]

वैदिक साहित्य के प्राचीनतम भाग में तन्त्र का पूर्व स्वरूप निश्चित रूप से मिलता है। वस्तुतः तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार सभी तान्त्रिक अनुष्ठान वेद से ही उत्पन्न हुआ है।[४]

---

[१] बृहत्संहिता १/९

[२] दिव्यवाणी पत्रिका पृ.६४५

[3] Indian Antiluary १९०६ जर २९८

[४] मीमांसा दर्शन तन्त्रवार्तिक के प्रथम भाग की भूमिका

वैदिक मन्त्रों में ही तान्त्रिक बीज मन्त्र आदि अनुस्यूत है। सामान्य धारणा यह है कि तन्त्रमत अथर्ववेद के सौभाग्य काण्ड से उद्भूत हुआ है। कतिपय तन्त्र ग्रन्थों में इसका स्पष्ट निर्देश मिलता है। कुलार्णव तन्त्र का कथन है कि-वेद और आगमरूपी महासमुद्र को ज्ञानरूपी मथानी से मथकर मैं इस कुलधर्म को प्रकट किया है।[१]

रुद्रयामल के सतरहवें पटल में देवी को अथर्ववेदशाखिनी कहा गया है। दामोदर कृत यन्त्र चिन्तामणि की भूमिका में ग्रन्थ की प्रशंसा के प्रसंग में अथर्ववेद को सारभूत कहा गया है। कौलाचार में भी वैदिकत्व का ही प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ में 'कुलशास्त्र' को वेदात्मक कहकर निर्देश किया गया है।[२]

कुलाचार में मूलभूत कतिपय श्रुतियों का भी उल्लेख किया गया है।[३]

श्यामशास्त्री जी के अनुसार तान्त्रिक यन्त्र और चक्र का वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक आदि वैदिक ग्रन्थों में भी उपलब्ध है।[४] राघव भट्ट एवं सेतुबन्ध आदि में महामाया आदि चौसठ तन्त्रों को वेदतुल्य माना है। क्योंकि वेद के उपासनाकाण्ड में अन्तर्भूत होने से आगमशास्त्रात्मक उपासना काण्ड ही तन्त्र है।[५]

तत्र सर्वासु श्रुतिषु काण्डत्रयं कर्मोपासनाब्रह्मभेदेन।
उपासनाकाण्डात्मकं गरीय इति सिद्धम्।।

---

[१] कुलार्णवतन्त्र २/१०
[२] कुलार्णवतन्त्र २/८५
[३] कुलार्णवतन्त्र २/१४०-४१
[४] घ्र्हे्हि ह्रग्र्ते्ब १९०६ जर २६२-२६७
[५] शारदा तिलक टी.१/७

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि वेद और तन्त्र को लेकर सनातन की पूर्णता है। वेद प्रवाहित धर्मशास्त्र ही काल-क्रम में तन्त्र की अभिनव धारा में प्रवाहित हुआ है। अतः इसमें मौलिक विरोध नहीं है।

देवीभागवत में इसी विषय को अभिव्यक्त करते हुए कहा है।मैं दोनों भुजाओं के द्वारा स्थावर राजस एवं तमोगुणात्मक सम्पूर्ण विश्व को धारण किया हूँ। आगम और वेद ये ही दो बाहु हैं। अतः इनका उलङ्घन करने वाला व्यक्ति अधः पतित होता है।[1]प्रत्येक धर्म के अलग-अलग आगम ग्रन्थ हैं बौध एवं जैन मतों का विशाल आगम साहित्य है। इस प्रकार वैष्णव,शैव,और शाक्तों के भी अपने-अपने ग्रन्थ हैं। प्रत्येक आगम में चार प्रतिपाद्य विषय होते हैं।

सामान्यतया आगम शब्द से शैव,वैष्णव दोनों की प्रतीति होती है। ठीक इसीप्रकार संहिता शब्द से केवल वैष्णवों का बोध नहीं होता। वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त पुराण,आयुर्वेद,ज्योतिष आदि संहिता नाम से अभिहित होने वाले विशालकाय ग्रन्थों की एक राशि विद्यमान है। वस्तुतः इन शब्दों में कोई भेद भाव नहीं है और तन्त्र शब्द का प्रयोग बहुधा अर्थ में हुआ है।[2]

यह सत्य है कि कुछ पाञ्चरात्र संहिताएँ एवं शैवागम ही उक्त नाम के चार भागों में विभक्त हैं, किन्तु ऐसा भी देखा गया है कि बिना पाद विभाग के ये सभी विषय प्रायः सभी तन्त्र गन्थों में प्रतिपादित हैं। पाणिनि,यास्क तथा स्वयं पुराणों ने ही 'पुराभवम्' (प्राचीन काल में होने वाला) माना हैं। पाणिनि सूत्र सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च''से पुरातन शब्द निष्पन्न होता है।[3]

---

[1] दवीभागवत पुराण. पृ.१९८

[2] भश्रीमद्भागवतमहापुराण १/३/८

[3] पाणिनि सूत्र ४/३/२३

पाणिनि ने अपने ही सूत्र (पूर्वकालिकसर्वजरतपुराणनव-केवला - समानाधिकरणेन) सिद्ध किया है।[1]

पं.बलदेव उपाध्याय जी के अनुसार 'पुराण' शब्द का ऋग्वेद में एक दर्जन से अधिक स्थानों पर उल्लेख मिलता है।[2]

जिसका अर्थ प्राचीन काल में होने वाला है। यास्क ने पुराण की व्युत्पत्ति 'पुरा नवं भवति' अर्थात् प्राचीन होकर भी नया होता हैं।[3]

अथर्ववेद में पुराणों को वेदों के साथ ही उच्छिष्ट से उत्पन्न होना माना है।[4]

शतपथ ब्राह्मण में अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर पुराणों के पाठ का विधान किया गया है।[5]

अतः पुराण शब्द प्राचीन अर्थ का द्योतक है -वह प्राचीन काल में नया था । इस भाँति वेद को दो खण्डों में विभक्त करके देखा जा सकता है-१-यज्ञवेद तथा २-पुराण वेद क्योंकि दोनों का विकास एक ही उच्छृष्ट से हुआ है-दोनों का विषय सृष्टि तथा लय है। इस भाँति प्रकृति जिस ढंग से काम करती है

---

[1] पाणिनि सू. २/१/४८ तथा ४/३/१०५

[2] पुराण विमर्श पृ.३

[3] निरुक्त ३/१८

[4] अथर्ववेद११.७.२४

[5] पुराण मन्थन पृ.१०

उसका पूरा ज्ञान हमें पुराण वेद से मिलता है और प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने की जो प्रक्रिया अपनायी जाती है वह यज्ञवेद की प्रक्रिया है।[१]

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्। ऋग्वेद में पुराण शब्द का उल्लेख अनेक मन्त्रों में होता है,[२] किन्तु इस स्थलों पर इसका अभिप्राय प्राचीन होना माना गया है।ऋग्वेद के ९/९९/४ में इसका प्रयोग गाथा शब्द के विशेषणरूप में है-अभिप्राय कुछ गाथाएँ उस काल में विकसित हो गयी थी- अथर्ववेद में पुराण इति गाथा नाराशंसी शब्दों के साथ प्रयुक्त है। यहाँ यह एक शिष्ट विद्या है- **ऋचः सामानि छन्दांसि.**[३]

ब्राह्मण-ग्रन्थों में पुराण- शतपथ- गोपथ

पुराण शब्द सामान्य भाषा में भी प्राचीनता का द्योतक है,कुछ आधुनिक विद्वान इसे कल्पित कथाएँ मानते थे। और यह कल्पना करते थे कि यह किसी गम्भीर विद्या का द्योतक नहीं है इसलिए यह आवश्यक है पुराण शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में भी कुछ विचार किया जाय।

पाणिनि ने अपने सूत्र ''सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च''[४] द्वारा पुरा भवम् अर्थात् प्राचीन काल में होने वाला। इस अर्थ में प्रयोग किया गया है।

---

[१] पुराण परिशीलन पृ.४

[२] ऋग्वेद ३/५८/६,तथा १०/१३०/६

[३] अथर्ववेद ११/७/४

[४] अष्टाध्यायी४/३/२३

निरुक्तकार ने भी पुराण शब्द की व्युत्पत्ति ''पुरा नवं भवति''[1] अर्थात् जो प्राचीन काल में भी नया होता है । वायु पुराण के अनुसार 'पुरा अनति' अर्थात् जो प्राचीन काल में जीवित था।[2]

पद्मपुराण में 'पुरा परम्परावष्टि कामयते' अर्थात् जो प्राचीन काल की परम्परा की कामना करता है।[3] ब्रह्माण्ड पुराण इससे भिन्न एव तीसरी व्युत्पत्ति देता है। जिसका अभिप्राय है 'पुरा एतत् अभूत'।[4]

इतिहास पुराण शब्द का साथ-साथ प्रयोग होने के कारण कभी-कभी यह भ्रान्त धारणा बनती जा रही थी, इसी कारण कतिपय पाश्चात्य विद्वान यह मानने को तैयार नहीं थे कि पुराण और इतिहास ये दोनों विद्याएँ भिन्न-भिन्न है। यास्क ने भी उल्लेख किया है कि ऋग्वेद में ही त्रिविध ब्रह्म के अन्तर्गत इतिहास मिश्र,मन्त्र पाये जाते है। छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या सीखे जाने पर नारद द्वारा पूछे जाने पर आपने क्या क्या अध्ययन किया है कहा था।[5]

इतिहास की व्युत्पत्ति में विद्वानों ने (इति इत्थम्+निश्चयेन आ स था) अर्थात् जो प्राचीनकाल में होनें वाली घटना को इतिहास कहा जाता था।'इति ह एवासीत इति य उच्यते स इतिहासः'।[6]

महाभारत को इतिहास ही कहते है, इतना ही नही महाभारत स्वयं को इतिहास कहता है। **जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।**[1]

---

[1] निरुक्त ३/१९

[2] वायुपुराण.१/२०३

[3] पद्मपुराण.५/२/५३

[4] ब्रह्माण्ड पु.१/१/१७३

[5] छान्दोग्योपनिषद् ७/१

[6] निरुक्त २/३/१दुर्गाचार्य की टीका

राजशेखर के अनुसार इतिहास दो प्रकार का होता है, प्रथम परिक्रिया अर्थात् एक नायक वाली कथा। जैसे रामायण, इतिहासोत्तमादस्माज्जायते कवि बुद्धयः।[2] दूसरा पुराकल्प अर्थात् बहुनायक की कथा जैसे महाभारत, परिक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा, स्यादेक नायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका। काव्यमीमांसा। महाभारत ने स्वयं को इतिहास माना है और स्वयं को पुराण की संज्ञा भी दिया है।[3]

वायु पुराण में भी पुरातन इतिहास की चर्चा है। इन विभिन्न व्याख्याओं से यह स्पष्ट होता है कि पुराण तथा इतिहास संयुक्त रूप में व्यवहृत होते हुए भी अपनी अलग पहचान रखते थे।

शङ्कराचार्य ने छान्दोग्योपनिषद् की टीका में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इतिहास तथा पुराण दानों ही वेदों में उपलब्ध है। उर्वशी तथा पुरुरवा के संवाद को शतपथ ब्राह्मण ने इतिहास माना है।

उर्वशी हाप्सराःपुरुरवस्मै चक्रमे ।[4]

यह सृष्टि के उत्पत्ति के कथानक को पुराण माना है।

शङ्कराचार्य की दृष्टि में दोनों पृथक्-पृथक् है प्राचीन आख्यान का सूचक भाग इतिहास है।

द्वैपायनो यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।

---

[1] म.उ.प.१३६/१८

[2] म.आ.प.२/३८५

[3] पुराण विमर्श पेज ६

[4] शतपथ ब्रा.११/५/१/१

सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम्।

सृष्टि प्रक्रिया बताने वाला पुराण है। **सृष्टि प्रतिपादिकं ब्राह्मेतिहासः।**

शतपथ ब्राह्मण की टीका में सायणाचार्य ने इसके विपरीत अर्थ किया है। 'आपो हवा इदं अग्रे सलीलमेवान्। इस अंश को इतिहास कहा है और पुरुरवा उर्वशी संवाद को आख्यान माना है।

पुरातनपुरुषवृत्तान्तप्रतिपादकानि पुराणम्।[1]

इदं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुराणम्।

शृणुयाद् श्रावयेद्वापि तथाऽध्यापयेऽपि च।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदेश्च सम्मतम्।

कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिनाम्।[2]

यही श्लोक ब्रह्मपुराण में भी उपलब्ध है।[3] इन विभिन्न शब्दों के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि पुराण,इतिहास,नाराशंसी,गाथा तथा वेद एक ही श्रोत से उद्भूत हुए है। विद्वानों का मत है कि ये सभी विद्याए उच्छिष्ट से प्रादुर्भूत हुई है। ऋचः सामानि छन्दांसि।[4]

विद्वानों ने उच्छिष्ट को ब्रह्मा माना है। उच्छिष्ट शब्द का अभिप्राय यहाँ यह प्रतीत होता है कि सभी ब्राह्मणों की रचना के पश्चात जो शेष रह जाय (उत् छिष्ट इस शब्द को स्पष्टरूप से भागवत निहित गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र से जोडा जा

---

[1] श.ब्रा.११/५/६/८

[2] वा.पु.१०३/४८-५१

[3] ब्रह्मपुराण४/४/४७-५०

[4] पुराण वि.पेज ८

सकता है। जहाँ ''निशेधशेषोजयतादशेषः''।[1] अर्थात् सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न हो जाने पर भी जिसका अस्तीत्व बना रहे।

मन्त्र का अर्थ करते हुए विद्वानों में सर्वत्र मतभेद है। कुछ लोग इसका अर्थ यज्ञ का अवशेष मानते है। सायणाचार्य की दृष्टि में (उत् उर्ध्वम्) अर्थात् सर्वेषां भूतभौतिकानां अवसाने,सीष्ट उर्वरीतः परमात्मा)[2]

व्रात्यस्तोम के अन्तर्गत इन मन्त्रों की उपलब्धि होती है। व्रात्यपद से रुद्रावतार परमात्मा का बोध होता है। पैप्लाद संहिता में व्रात्य के विषय में यह कहा गया है कि ये सबसे प्रथम दृष्ट था।

इससे यह निर्देश मिलता है कि व्रात्य शब्द भी परमात्मा का ही बोधक है। रुद्राष्टाध्यायी में (नमो व्रात्याय)कहकर व्रात्य को रुद्र का स्वरूप माना गया है।[3]

इतिहास पुराण के साथ व्रात्यस्तोम में पाँच वेदों की कल्पना की गयी है और यह बताया गया है कि जो व्यक्ति इनको अच्छी तरह जानता है वहीं इनका प्रिय धाम होता है।

यहाँ इतिहास,गाथा,तथा नाराशंसी के साथ प्राण शब्द का प्रयोग समानार्थक प्रतीत होता है। उपाध्याय जी के दृष्टि में ये शब्द लौकिक साहित्य की सत्ता की ओर इन्गित करता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य की दो धाराए प्रचलित हुई। जिनमें एक धारा विशुद्ध धार्मिक है जो किसी देवता विशिष्ट के स्तुति तथा प्रार्थना से सम्बन्ध रखती है।

---

[1] श्रीमद्भा.म.पु. ८/३/२४

[2] पुराण विमर्श पृ.८,९ ब.उ.

[3] शु.य.अ.१६/

दूसरी धारा पूर्णतया लौकिक है जिसका प्रयोग तथा अभ्यास लोक मे ख्याति प्राप्त करने के लिए किया जाता है।यह परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में ही दान स्तुति तथा नाराशंसी दोनों ही उपलब्ध होते है जिनमें ऋषि को प्रभूत दान देने वाले किसी आश्रय दाता शासक की ओर संकेत करता है।

पुराण का सम्बन्ध इसी द्वितीय धारा से मानना अधिक उपयोगी प्रतीत होता है। अथर्ववेद में यह उल्लेख है कि इस भूमि के पूर्व जो भूमि थी उस भूमि के विषय में सत्य ज्ञानी पुरुषों का ही बोध है।

जो व्यक्ति निश्चय ही इस भूमि का ज्ञाता होता है उसी को पुराणविद् माना जाना चाहिए।[१] यतोऽसीत् भूमि... तमृऋचश्च[२]... इन आख्यानों से यह स्पष्ट होता है कि चारों वेदों के समान ही पुराण का भी महत्व है। क्योंकि वेदों में इतिहास पुराण का उल्लेख साथ-साथ हुआ है।[३]

चतुर्वेदी जी ने पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्। के आधार पर यह व्याख्यायित किया है कि सृष्टि निर्माण के पूर्व सृष्टि कर्ता को सृष्टि का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है उनके इस उक्ति की पुष्टि ऋग्वेद के मन्त्र **ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ....धातापूर्वमकल्पयत् ।**[४]

अभिप्राय यह है कि पुराण सृष्टि विज्ञान का आदि श्रोत है क्योंकि आगमशास्त्र में यह निरूपित है कि शब्द प्रपञ्च तथा अर्थ प्रपञ्च दोनों सम्मिलित थे। अर्थात् परमात्मा ने भू शब्द का उच्चारण किया तथा भूमि का निर्माण किया।

---

[१] पु.वि.बल.पृ.१०

[२] पु.परि.पृ.२

[३]बृ.र.उ.अ.३/१०,पुराणपरि.पृ.३

[४] ऋग्वेद १०/१९०/१

इसका अभिप्राय यह है कि शब्द और अर्थ जो एक में थे उनकों विभाषित कर दिया । दूसरा अर्थ यह है कि शब्द और अर्थ दोनों से युक्त ज्ञान उनके पहले ही था।इस अभिप्राय को मनु ने इस प्रकार कहा है-

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्यएवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे।।[1]

यही बात गीता में भी कुछ इस प्रकार कही गयी है।

सह यज्ञा प्रजासृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्ट कामधुक्।[2]

महापुराण तथा उपपुराणों का परिचय

भारत के प्राचीन साहित्य में पुराणों का रेखांकित महत्व है क्योंकि भारतीय मनीषा, कला तथा इतिहास का उल्लेखनीय संरक्षण पुराणों के माध्यम से हुआ है। अतः महापुराण,उपपुराण या सूतसंहिता के नाम से अभिहित होनें वाली प्राचीन कृतियाँ इसे प्रमाणित करती है कि पुराण साहित्य ही भारतीय विद्या का श्रीयन्त्र है, जो हमारे समक्ष दीप्तिमान् ज्ञान का अदिति-रूप उपस्थापित करता है। वास्तव में भारतीय वाङ्मय में वेद और पुराण अन्योन्याश्रित-रूपेण एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। पुराण वेदों की सूत्रात्मक ज्ञानराशि का भाष्यात्मक रूप

---
[1] मनु.अ.१/२१
[2] श्रीमद्भ.गीता अ.३/१०

प्रस्तुत करते हैं। इस विषय के प्रमाणस्वरूप यजुर्वेद के मन्त्र "**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्**"।[१]

का भाष्य ले सकते हैं। इसमें पुराण के वामनावतार का व्याख्यान किया गया है।

ऋषियों द्वारा पुराण और इतिहास के माध्यम से वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है। "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" जिसमें स्वतः सिद्ध है कि पुराणों की रचना का प्रमुख उद्देश्य है वेदतत्त्वों के ज्ञान को जनसाधारण तक पहुँचाना एवं वेदज्ञान का पोषण वेदों एवं पुराणों की उत्पत्ति एवं स्वरूप (पूर्वाक्रम) के सम्बन्ध में स्वयं पुराणों में मतभेद हैं।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः।[२]

विष्णु पुराण के उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध होता है कि वेदों के ज्ञाता महर्षि वेदव्यास ने वेदों का विभाग करने के बाद प्राचीन कथाओं, आख्यानों, गीतों और जनश्रुतियों को एकत्र कर उनके आधार पर पुराण संहिता की रचना की, किन्तु ब्रह्माण्डपुराण के अग्रलिखित श्लोक के अनुसार ब्रह्माजी ने सभी शास्त्रों में पहले पुराणों का स्मरण किया तत्पश्चात् उनके मुख से वेद प्रकट हुए।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।।[१]

---

[१] शु.य.५/१५
[२] वि.पु.३/६/१५

महर्षि वात्स्यायन ने तो अपने ''न्याय दर्शन भाष्य'' में वेदों और पुराणों का आविर्भावकाल समान ही निर्धारित किया है।

जिसप्रकार वेद अपौरुषेय हैं, ऋषिगण उनके मन्त्रद्रष्टा हैं, ब्रह्मा प्रकटकर्ता हैं तथा महर्षि वेदव्यास विभिन्न संहिताओं के रूप में उनके सम्पादक है। उसी प्रकार से पुराणों की मूल सामग्री का कर्ता कोई अन्य नहीं, अपितु वेद-प्रतिपादित पुराणों के स्मर्ता ब्रह्मदेव और वक्ता उनके ऋषिगण हैं। वेदों की भाँति पुराणों का प्रादुर्भाव भी ब्रह्माजी द्वारा हुआ है। महर्षि वेदव्यास ने तो उनका सम्पादनमात्र किया है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।

उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपकारकम्।।[२]

के अनुसार ब्रह्माजी पुराणों को शतकोटि श्लोकात्मक, सभी श्लोकों में सब प्रकार से ज्ञानप्रतिपादक, धर्म, अर्थ एवं कामरूपी त्रिवर्ग साधक के रूप में स्मरण करते हैं।

कालान्तर में लोगों की ग्रहण-क्षमता का अभाव देखकर व्यास रूप में प्रत्येक द्वापरयुग में चार लाख श्लोकों और भेदों में उन्हीं की भूलोक में रचना करते हैं-

कालेन ग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः।

---

[१] ब्रह्माण्ड पु.१/१/१/४०-४१

[२] पद्मपुराण,सृ.ख.१/४५-४६

व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे-युगे।।

चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ।

तदाष्टदशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्।।[१]

पुराण मूलतः ब्रह्माजी की देन (रचना) है,भले ही इसका प्रतिपादन चाहे उनके द्वारा किया गया हो अथवा महर्षि व्यास द्वारा किया गया हो। महर्षि वेदव्यास ने पुराणसंहिता का सम्पादन कर उसे अपने शिष्य लोमहर्षण ऋषि को पढाया, जिन्होंने सर्ग, प्रतिसर्ग,मन्वन्तर,वंश, वंशानुचरित में विभक्त कर,लोमहर्षिणी संहिता का सम्पादन कर उसे आत्रेय,भारद्वाज, वशिष्ठ,शांख्यायन,कश्यप,सावर्णि गोत्रों से सम्बन्धित क्रमशः सुमति,अग्निर्वचस,मित्रासु, सुशर्मा,अकृतवर्ण,सोमदत्ति नामक छह शिष्यों को पढाया। इन शिष्यों ने उक्त दोनों संहिताओं के आधार पर अलग-अलग संहिताओं की रचना की। इस प्रकार आठ पुराण संहिताओं की रचना हुई।

वायुपुराण एवं विष्णुपुराण के अनुसार लोमहर्षिणिका, काश्यपिका, सावर्णिका, शांख्यायनिका, ये चार ही संहितायें हैं,जिसमें जिज्ञासा,आख्यान,संवाद एवं प्रवृत्ति के अनुरोध से प्रसंगतः संक्षिप्त और विस्तृत अनेक कथानक जोड़े गये हैं।

इस प्रकार वेद-निहित ज्ञान ही वेदज्ञान है। जो इसे ग्रहण करने में अक्षम जिज्ञासुओं के लिए पुराणों के रूप में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में पुराण संहिताएँ ही पुराणों का आधार बनी।

---

[१] प.पु. सृ.ख.१/५१-५२

पुराण-लक्षण

पुराण नामधारी ग्रन्थों की अधिकता के कारण पुराणों का वर्गीकरण एक समस्या बन गयी है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में पुराण के कतिपय लक्षण इस प्रकार वर्णित हैं-

सृष्टिश्चापि विसष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम्।

कर्मणा वासना वार्ता मनूनां चक्रमेण च।।

वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।

तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक-पृथक्।।

यद्यपि ये लक्षण पुराणों के सम्बन्ध में उनकी पूर्णता के लिए बनाये गये थे,परन्तु वर्तमान में किसी भी पुराण में ये समस्त लक्षण पूर्णतः नहीं मिलते।

कतिपय पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित पुराण के लक्षण बताये गये हैं।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम् ।।

पुराण-भेद -वर्तमान समय में पुराणों के नाम पर सर्वाधिक ख्याति महापुराणों की है। इनके अतिरिक्त उपपुराण, इतिहास, पुराणसंहिता, एवं औपपुराण आदि पुराणों के वर्ग भी पौराणिक ग्रन्थों में उल्लिखित किये गये हैं, परन्तु ''अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्'' के आधार पर यह निश्चित है कि पुराणों की संख्या १८ ही है। देवी भागवत के श्लोक-

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचुष्टयम्।

अनापलिङ्गस्कूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक्।।[१]

[१] देवीभागवत महापुराण.१/३/२

मद्वयं-१.मत्स्य, २.मार्कण्डेय,भद्वयं-१.भविष्य, २.भागवत,ब्रत्रयं-

१.ब्रह्म,ब्रह्मवैवर्त,ब्रह्माण्ड,वचुष्टयं-

१.वाराह, २.वामन, ३.वायु,४.विष्णु,अ,ना,प,लिं,ग, क्रम से १-अग्नि, नारदीय, पद्म, लिङ्ग गरुण,कू,स्क, क्रमशः १.कूर्म, स्कन्द पुराण।

स्कन्द पुराण केदार खण्ड के अनुसार तत्तत् पुराणों में प्रमुख देवताओं का उल्लेख प्राप्त होता है-

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः।।[1]

के अनुसार -शिव,भविष्य,लिङ्ग,स्कन्द,मत्स्य,कूर्म, वामन,वाराह,अग्नि,तथा नारद इन दश पुराणों के प्रतिपाद्य देवता शिव हैं। ब्रह्म,पद्म,ब्रह्माण्ड,और ब्रह्मवैवर्त पुराणों के प्रतिपाद्य देवता ब्रह्मा जी हैं। देवी भागवत एवं मार्कण्डेय पुराणों के देवता देवी हैं। तथा विष्णु और गरुड़ पुराणों के देवता श्रीहरि विष्णु हैं।

शरीरावयव दृष्टि से भी पुराणों का वर्गीकरण किया गया है-

१-हृदय-पद्मपुराण, २-शिर-ब्रह्मपुराण, ३-दक्षिणबाहु-विष्णुपुराण, ४-वामबाहु-शिवपुराण, ५-जङ्घा-भागवतपुराण, ६-नाभि-नारदीयपुराण, ७-दक्षिणपाद-मार्कण्डेयपुराण, ८-वामपाद-अग्निपुराण, ९-दक्षिणसक्थि-भविष्यपुराण, १०-वामसक्थि-ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११-दक्षिणगुल्फ-लिङ्गपुराण, १२-वामगुल्फ-वाराहपुराण, १३-रोम-स्कन्द, १४-त्वचा-वामनपुराण, १५-पीठ-कूर्मपुराण, १६-स्नायु-मत्स्यपुराण, १७-मज्जा-गरुणपुराण, १८-अस्थि-ब्रह्माण्डपुराण

---

[1] कालिकापुराण भूमिका पृ.१

उपपुराण स्वरूप- विवेचन

पुराण साहित्य से हमारे भारत की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने में अभूतपूर्व एवं महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता रहा है। वस्तुतः पुराणों-उपपुराणों का भी एक अद्वितीय, विस्मयकारी तथा दिव्य संसार है जिसमें विचरण करने से अनेकानेक ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान तथा धर्म एवं सदाचार की ओर उनका झुकाव होता है। इन पुराणों के पाठ कर्ता आत्मोत्थान की ओर अग्रसर होता हुआ अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों के विकास में सहायक ये पुराण-उपपुराण निश्चय ही हमारी भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है,तथा भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विश्व-कोष भी कहा जा सकता है।

पुराण वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार जी ने पुराणों के विषय में कहा है कि -'वस्तुतः पुराण सर्वसाधारण की सर्वांगीण उन्नति और परम कल्याण की साधन-सम्पत्ति के अटूट भण्डार हैं''। अपनी-अपनी श्रद्धा, रुचि, निष्ठा तथा अधिकार के अनुसार साधारण अनपढ मनुष्य से लेकर बड़े-बड़े विचारशील बुद्धिवादी पुरुष के लिए भी इनमें उपयोगी साधन सामग्री भरी है। ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, नियम, सेवा, भूत-दया, वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, नारी-धर्म, मानव-धर्म, राजधर्म, सदाचार, और व्यक्ति -व्यक्ति के विभिन्न कर्तव्यों के सम्बन्ध में बड़ा

ही विचारपूर्ण और अत्यन्त कल्याणकारी अनुभूत उपदेश,बडे रोचक भाषा के माध्यम से इन पुराणों में प्राप्त होता है।[1]

पुराणों के विषय में पोद्दार जी के द्वारा व्यक्त किये गये अनुभवों के आधार पर उपपुराणों के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होते हैं। क्योंकि उपपुराणों का प्रतिपाद्य भी पुराणों के वर्ण्य विषय में समान लोक-मंगल का जन -कल्याण का विधान करता है। उपपुराण शब्द से स्पष्ट होता है कि पुराण से पूर्व हिन्दी संस्कृत कोष-ग्रन्थों के अनुसार उप उपसर्ग का भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग होता ह। प्रधान रूप से उप उपसर्ग लगाने से तीन प्रकार का अर्थों का बोध हेता हैं-१-छोटा,२-पास (निकट) ३-विस्तार।[2] जैसे-उपकथा, उपखण्ड, उपग्रह, उपद्वीप, उपधारा, उपनगर, उपनदी, उपनायक, उपभेद, उपमन्त्री, उप-मण्डल, उपवाक्य, उपशीर्षक, उपवन, उपशाखा, उपाख्यान, उपाध्यक्ष,तथा उपहार जैसे शब्दों में उप का अर्थ छोटा अर्थ में ही हुआ है। उपनिषद्, उपकूल, उपगमन, उपचार, उपन्यास, उपवसन, उपागत, उपान्त, उपसरण, उपभोग, इत्यादि शब्दों में उप का प्रयोग निकट के अर्थ में हुआ है। इसीप्रकार उपकार, उपदेश, उपलब्ध, उपसंहार, उपसर्ग, उपहार तथा उपकरण इत्यादि में विस्तार अर्थ में उप का प्रयोग देखा जा सकता है। कहीं-कहीं उप का प्रयोग सहायक तथा पूरक के अर्थ में भी हुआ है। डॉ.हाजरा के अनुसार उपपुराणों के सम्बन्ध में ोम्दर्हैब

[1] संक्षिप्त स्कन्द पुराणांक (कल्याण) प्रस्तावना,पृ.७

[2] डॉ.हरदेव बाहरी-राजपाल हिन्दीकोश पृ.९२०

एवं `ल्ज्ज्त्सहू शब्दों का प्रयोग किया है। जिन्हें यहाँ सहायक या पूरक शब्द को ले सकते है।[१]

शब्दों का प्रयोग किया है जिन्हें यहाँ क्रमशः सहायक तथा पूरक शब्द कहा गया है। उपसर्ग के प्रयोग से होने वाले अर्थान्तरण के आधार पर यह कहना संगत होगा कि पुराणों के सहायक पुराणों के पूरक तथा पुराणों के विस्तार देने वाले ग्रन्थ उपपुराण कहे जाते हैं।

पौराणिक शैली में रचित वे ग्रन्थ,जिनमें किसी पुराण की कथा को संक्षेप में या विस्तार में प्रस्तुत किया गया हो,अथवा पुराण में वर्णित घटनाओं के छूटे हुए अंशों को जोडा गया हो, उसे उपपुराण कहते हैं। उपपुराण शब्दार्थ के आधार पर दिया गया यह निष्कर्ष निश्चय ही व्याख्या सापेक्ष है।

इस लक्षण की व्याख्या से ही उपपुराण के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो पाएगा।

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि पुराण किसे कहते हैं, पुराण शब्द का क्या लक्षण है। पुराण शब्द की निरुक्ति कई पुराणों में उल्लिखित है। वायु पुराण में कह गया है कि ''पुरा अनति -जीवति यत् पुराणम्'' यस्मात् पुरा ह्यनक्तीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम्।[२]

पद्मपुराण के अनुसार ''पुरा परम्परां वष्टि - कामयते यत्तत्पुराणम्''।

पुरापरम्परां वष्टि पुराणं तेन तत्स्मृतम्।[३]

---

[1] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.१

[२]वा.पुराण १/२०३

[३] पद्मपुराण९/२/५३

ब्रह्माण्डपुराण में 'पुराण' शब्द की निरुक्ति इस रूप में की गयी है ''पुरा एतत् अभूत- इति पुराणम्'' यस्मात्पुरा ह्यभूच्चैतत्पुराणं तेन तत्स्मृतम्।[1] मत्स्य पुराण के अनुसार निम्नोक्त है- ''पुरातन कालस्य (कल्पस्य) यद्विवरणं तत्पुराणम्''। पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।[2]

यास्क मत के अनुसार 'पुराण' शब्द का निर्वचन ''पुरा नवं भवति'' के रूप में किया है।[3] इन सभी निरुक्तियों -निर्वचनों का एक ही तात्पर्य है,एक ही अभिप्राय है कि 'पुराण' में प्राचीन काल की घटनाओं का,प्राचीन आख्यानाओं का वर्णन है।

'पुराण' -शब्द की उक्त व्याख्याओं से यह तो स्पष्ट हो गया है कि 'पुराण' वे ग्रन्थ हैं जिनमें प्राचीन युगों के,मन्वन्तरों,कल्पों के विवरण प्रस्तुत किये गये हैं किन्तु 'पुराण' के लक्षणाज्ञानाभाव में 'पुराण' का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। अठारह पुराणों में से ग्यारह पुराणों में ही 'पुराण' के पाँच लक्षणों का उल्लेख किया गया है-

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।।[4]

[5]अग्निपुराण, [1]भविष्यपुराण, [2]ब्रह्मवैवर्तपुराण, [3]वाराहपुराण, [4]स्कन्दपुराण, [5]कूर्मपुराण,

---

[1] ब्रह्माण्ड पु.१/१/१७३

[2] मत्स्य पु.५३/७२

[3] निरुक्त ३/१९

[4] विष्णु पु.३/६/२४

[5] अ.पु.१/१३,

[6]मत्स्यपुराण, [7]गरुणपुराण, [8]ब्रह्माण्डपुराण,प्रक्रिया, [9]शिवपुराण (वायवीय)

अर्थात् सृष्टि,प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि, देवताओं-ऋषियों की वंशावली,मनु-काल-विभाग तथा राजा-महाराजाओं का वंश-वृत्त इन पाँच लक्षणों से युक्त पुराण कहलाता है।

भागवतपुराण में 'पुराण' के दश लक्षणों का भी प्रतिपादन किया गया है।[10]

किन्तु 'पुराण' पञ्चलक्षण ही 'पुराण' का सर्वमान्य लक्षण है। उक्त पाँच लक्षणों से युक्त पुराणों की संख्या अठारह सर्वमान्य है। इनकी नामावली इस प्रकार है- ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण,वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुणपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण।

कतिपय विद्वानों ने चौथे क्रम में उल्लखित शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण की गणना करते है। वायुपुराण को प्राचीन एवं प्रामाणिक स्वीकार करते हुए शिवपुराण को परवर्ती काल का ग्रन्थ माना गया है। [1]

---

[1] भ.पु.२/५
[2] ब्रह्मवै.पु.१३३/३
[3]वारा.पु.२/४
[4] स्क.पु.२/१४
[5] कू.पु.१/१२
[6] मत्स्य.पु.५३/६४
[7] ग.पु.(आचार) २/२८
[8] ब्रह्माण्ड पु.१/३८
[9] शिव.पु. (वायवीय) १/४१,
[10] भागवत पुराण २/१०/१

कुछ विद्वानों ने विकल्प से दोनों को मान्यता देते हुए पुराणों की संख्या १८ही मानी है।

विष्णुपुराण में उल्लिखित सभी पुराणों को महापुराण की संज्ञा दी गयी है।[2]

इन विशालकाय महापुराणों की श्लोक-संख्या परम्परागत मान्यता के अनुसार चार लाख है। पुराणों के इस संक्षिप्त परिचय के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि इन विशाल-वपु महापुराणों में सृष्टि,प्रलय, प्रलयोपरान्त पुनः सृष्टि देवताओं-ऋषियों के वंशों मन्वादि राजाओं के इतिहासादि अनेकानेक विषयों का विस्तार पूर्वक किया है।

इन्हीं १८ पुराणों के सहायक या पूरक के रूप में जिन ग्रन्थों की रचना हुई है वे उपपुराण के ही रूप में विदित हैं। डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी के अनुसार अठारह महापुराणों के समान १८ उपपुराणों की रचना महापुराणों के आधार पर विभिन्न मनीषियों-मुनियों के द्वारा की गयी है।

विस्तार-भय वश कहीं तो महापुराणों की कथा को उपपुराणों में संक्षिप्त-रूप में प्रस्तुत किया गय है तो कहीं-कहीं महापुराणों की कथा को छोड दिया गया है। कहा-कहीं चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विलक्षण- कथाओं का समावेश किया है। इस विशिष्टता के होते हुए उपपुराण भी महापुराणों के समान ही समादृत

[1] आचार्य बलदेव उपाध्याय,पुराण विमर्श पृ.१०५

[2]विष्णु पुराण ३/६/२

एवं सर्व मान्य है।[1] डॉ. त्रिपाठी उपपुराणों का मूल स्त्रोत महापुराण ही मानते हैं।[2]

महापुराणों के समान उपपुराणों के भी पाँच लक्षण ही बताये गये हैं। इतना ही नहीं कतिपय उपपुराणों का तो नामकरण भी उप उपसर्ग को स्वीकार नहीं करता यथा देवी-पुराण,कपिल-पुराण,नन्दी-पुराण,नृसिंह-पुराण इत्यादि। महापुराणों अथवा पुराणों की संख्या १८ निश्चित हो जाने पर भी पुराण-संज्ञक ग्रन्थों की रचना परवर्ती समय में भी होती रही। अतः परम्परा-पुष्ट ८पुराणों के पश्चात् जिन पुराणों की रचना हुई,वे उपपुराण के नाम से प्रतिष्ठित हुए। इतना ही नहीं प्रत्येक उपपुराण को किसी न किसी पुराण से सम्बद्ध भी माना गया है।

कालान्तर में जब उपपुराणों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती गई तब इन्हें स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। डॉ. आर.सी .हाजरा के मतानुसार समय के गति के साथ-साथ पुराणों की संख्या में तो वृद्धि होती गयी, किन्तु पुराणों की संख्या को १८ मानने के पक्षधर विद्वान् इन ग्रन्थों को पुराण के समकक्ष मानने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु दूसरी ओर ये नये ग्रन्थ इतने प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हो गये कि इनकी पूर्णतया उपेक्षा भी सम्भव नहीं रही। अतः इन ग्रन्थों के मूल अष्टदश पुराणों से पृथकता को नकारने के लिए इन्हें किसी न किसी पुराण से सम्बद्ध मान लिया गया है। इन्हें अठारह पुराणों के प्रसिद्ध उपभेद के रूप में उपपुराण के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

डॉ.हाजरा उपपुराणों को स्वतन्त्र ग्रन्थ स्वीकार करते है।[1]

---

[1] कपिल पुराण,प्रस्तावना,पृ.२४

[2]तत्रैव

महापुराणों और उपपुराणों के अनुशीलन से दो बातें स्पष्ट होती हैं जो इन दोनों के पार्थक्य को सूचित करती हैं। प्रथमतः महापुराणों में राजवंशों का इतिहास अनिवार्य रूप में दिया गया है जबकि उपपुराणों में राजवंशों के इतिहास का उल्लेख करने की ओर विशेषाग्रह लक्षित नहीं होता।

उपपुराणों में सूर्य-वंश तथा चन्द्र-वंश की चर्चा तो हुई है जो उपपुराणों की परम्परा से जुड़नें की विवशता के द्योतक है। किन्तु पुराणों के समान इनमें कलियुगी राजा-महाराजाओं का तथा उनके वंशों का वर्णन नहीं हुआ है। किसी-किसी उपपुराणों में यदि राजवंश का उल्लेख हुआ है तभी तो उपपुराणकार ने उसकी सत्यता,प्रमाणिकता यहाँ तक कि क्रमबद्धता की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया। राजवंशों के वर्णन में उपपुराणकारों में रुचि का अभाव सम्भवतः तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का परिणाम है।

उपपुराण के रचनाकाल में बड़े-बड़े प्रतापी राजा और प्रभावशाली राजवंशों के न होने से उपपुराणों में उनका उल्लेख नहीं हुआ ।

पुराणों और उपपुराणों में दूसरा अन्तर यह दिखाई देता है कि पुराणों के विषय निर्दिष्ट हैं जबकि उपपुराणों में अनेकानेक नूतन विषयों का समावेश हुआ हैं उपपुराणों के रचनाकाल में अनेक नवीन धर्म-सम्प्रदायों का प्रादूर्भाव एवं विकास हो चुका था,अतः इन ग्रन्थों में उन नये-नये धर्म-सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का इनकी साधना पद्धतियों का भी उल्लेख उपपुराणों में किया गया है। जिन-जिन प्रदेशों,जनपदों में उपपुराणों में दृष्टिगत हो जाती है ।

---

[१] ॅूल्गे ग्ह ूप ल्र्ज्र्ल्र्हें,न्दत्ल्स १पृ.२४

इस सम्बध में डॉ.आर.सी.हाजरा के अभिमत को यहाँ उसके मूल रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। उपपुराणों के विषय में वह कहते है। They not only afford us great insight into all phases and aspects of hinduism-its mythology.its idol-worship,its theism and pantheism its love of its philolosphy and superstitions,its festivals and ceremonies and its ethics,but also supply us with important information about the different branches of science and literature which were developed in ancient india and at the same time render us inestimable help in reconstructing some of those monumental works of sanskrit litrature, which have been lost for ever.ln these respects the upapuranas are somtimes more important than the mahapuranas.[1]

पुराणों से उपपुराणों पृथकता एवं उनकी स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में प्रतिष्ठा सम्बन्धी इस चर्चा के उपरान्त एक बात और स्पष्ट करना उचित होगा।

उपपुराणों को सहायक या पूरक कहा गया है,पुराण से पूर्व लगने वाले इस उप के कारण क्या उपपुराणों की महता पुराणों से न्यून है,क्या उनकी प्रतिष्ठा पुराणों की तुलना में आनुषंगिक है-इस विषय में डॉ.हाजरा के उक्त उद्धरण से तो उपपुराणों के महत्व का परिज्ञान हो ही जाता है,इसके अतिरिक्त एक अन्य संकेत भी हम देना चाहते है। पाणिनि के 'उपोऽधिके'[२] सूत्र में उप का अर्थ है अधिक-

---

[1] studies in the upapuranas,volume १पृ.२६

[२] पा.अष्टा.१/४/८७

उपपुराणों के सन्दर्भ में इस सूत्र के प्रयोग के दो अर्थ द्योतित होते हैं। एक अर्थ तो उपपुराणों की संख्या पुराणों से अधिक है और दूसरा अर्थ होगा पुराणों की तुलना में उपपुराण-संज्ञा वाले ग्रन्थों का महत्व अधिक है।

इस दृष्टि से विचार करते हुए कहा जा सकता है कि उपपुराणों का महत्व,उनका गौर व पुराणों से अधिक है, किसी भी अवस्था में कम नहीं है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अष्टादश पुराणों के अतिरिक्त भी पौराणिक शैली में लिखित अनेकानेक ग्रन्थ विद्यमान हैं जिन्हें उपपुराण कहा गया है। प्रारम्भ में इन्हें पुराणों का ही भेद-उपभेद माना जाता था किन्तु कालान्तर में इन्हें उपुराणों से भिन्न एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाने लगा।

पुराणों के समान उपपुराणों में भी भारतीय धर्म-साधना,भारतीय आचार-विचार, यहाँ के तत्त्व-चिन्तन,तीर्थ-व्रत, उत्सव आदि विषयों का आख्यानों-उपाख्यानों की रोचक शैली में वर्णन हुआ है।

उपपुराण भारतीय संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाले महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। आकार,संख्या,वर्णनात्मकता,दार्शनिक चिन्तन,धर्म-सम्प्रदायों के विकास सम्बन्धी जानकारी से परिपूर्ण-उपपुराण भारतीय वाङ्मय की बहुमूल्य सम्पदा है।

रचयिता तथा रचना काल

उपपुराणों के रचयिता कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे। इनकी रचना मनीषी-मुनियों के द्वारा की गयी है। स्कन्द पुराण की पद्म-संहिता में कहा गया है -

अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा सत्यवती सुतात्।

अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कीर्तितानि तु।[1]

कूर्मपुराण में भी यहीं कहा गया है- अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कीर्तितानि तु।[2]

पराशरोपपुराण में कहा गया है कि प्राचीन समय में भगवान् शिव ने मुनियों को उपपुराणों की रचना करने की आज्ञा दी,तब उन मुनियों ने व्यास जी से पुराणों के श्रवण से मुदित होकर पुराणों के सार-रूप में अन्यान्य उपपुराणोंकी रचना की ।

एवमाज्ञापितास्तेन शिवेन मुनयः पुरा।

श्रुत्वा सत्यवती सूनो पुराणं सकलं मुदा।।

अन्यान्युपपुराणानि चक्रुः सारतराणि वै।[3] इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उपपुराणों की रचना ऋषि-मुनियों के द्वारा की गयी है। प्रारम्भ में पुराणों के पूरक एवं सहायक माने जाने के कारण उपपुराणों की संख्या भी अठारह ही मान्य रही किन्तु समय की गति के साथ-साथ उपपुराणों की संख्या में वृद्धि होती गयी । इतना ही नहीं उपपुराणों के साथ-साथ औपपुराण (उप+उप)उपौपपुराण भी अस्तित्व में आये।

कूर्मपुराण के अनुसार उपपुराणों के नाम

---

[1]स्कन्द पुराण,सूत संहिता १/२२

[2] कूर्म पुराण,१/१/२६

[3] पराशरोपपुराण १/२७-२८

(१) आदिपुराण,(२) नरसिंह पुराण,(३) स्कन्द पुराण,(४) शिवधर्म पुराण,(५) दुर्वासा पुराण,(६) नारदीय पुराण (७) कपिल पुराण,(८) वामन पुराण,(९) औशनस पुराण,(१०) ब्रह्माण्ड पुराण,(११) वरुण पुराण,(१२) कालिका पुराण,(१३) माहेश्वर पुराण,(१४) साम्ब पुराण, (१५) सौर पुराण,(१६) पराशर पुराण,(१७) मारीचपुराण तथा १८भार्गव पुराण। कुछ शब्दों अथवा नामों के अन्तर के साथ (१८) उपपुराणों के उल्लेख देवी भागवत में भी मिलता है।[१]

स्कन्द पुराण (रेवा खण्ड)[२]तथा गरुण पुराण[३]में भी हुआ है। कूर्म पुराणों में उपपुराणों के उपर्युक्त नामों के साथ-साथ उनके कर्म की ओर भी कुछ संकेत किया गया है। अतः यहाँ कूर्मपुराण के वे श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं,जिनमें १८ उपपुराणों की गणना की गयी है-

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्।
चतुर्थ शिव धर्माख्यं साक्षन्नन्दीश भाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्।
कापिलं वामनं चैव तथौवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्डं वरुणं चैव कालिकाह्वयमेव च।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसंचयम्।

[१] देवी भागवत १/३/२६
[२] स्कन्द पुराण रेवाखण्ड १/४६-५२
[३] गरुण पुराण,१/२२३/१७-२०

पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्।[1] अठारह उपपुराणों के साथ- साथ अठारह औपपुराणों का भी अनेक ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है। इन औप पुराणों की नामावली इस प्रकार दी गयी है-

१सनत्कुमार पुराण, बृहन्नारदीय पुराण, आदित्य पुराण, सूर्य पुराण, नन्दिकेश्वर पुराण, कौर्मपुराण, भागवत पुराण, वसिष्ठ पुराण, भार्गव पुराण, मुद्गल पुराण, कल्किपुराण, देवीपुराण, महाभागवतपुराण, बृहद्धर्मपुराण, परानन्द पुराण, वह्नि पुराण, पशुपति पुराण तथा हरिवंशपुराण। बृहद्विवेक नामक ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में भी उक्त औपपुराणों का वर्णन किया गया है-

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं वृहच्च यत्।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च।।
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वसिष्ठ भार्गवं तथा ।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः।।
बृहद्धर्म परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा।
हरिवंश ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम्।।

पौराणिक वाङ्मय के अन्तर्गत कतिपय अन्य ग्रन्थों की रचना हुई जिन्हें धार्मिक जगत में अतिपुराण कहा गया है। इनकी भी संख्या १८ की वर्णित है-कार्तव, ऋजु, आदि, मुद्गल, पशुपति, गणेश, सौर, परानन्द, बृहद्धर्म, महाभागवत, देवी पुराण, कल्कि पुराण, भार्गव, वसिष्ठ, कौर्म, गर्ग, चण्डि और लक्ष्मीपुराण।[2]

---

[1] कूर्म पुराण १/१/१-२०

[2] संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक(कल्याण) भूमिका,पृ.७

अतिपुराण नाम से उल्लिखित उक्त ग्रन्थों में कुछ नाम उपपुराणों के हैं तो कुछ औपपुराण तथा उपौपपुराणों के रूप में प्रचलित हैं। नाम-साम्य वाले ग्रन्थों को यदि इन तीनों सूचियों में एक ही ग्रन्थ मान लिया जाय तो भी इसकी संख्या चालीस के लगभग बैठती है।

निश्चय ही इन ग्रन्थों का,उपपुराणों,औपपुराणों उपौपपुराणों-अतिपुराणों का न तो कोई एक व्यक्ति रचयिता हो सकता है और न ही ये एक कालावधि की रचनएँ मानी जा सकती हैं। विभिन्न मुनियों ने भिन्न-भिन्न कालो में इनकी रचना की होगी-इसमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता ।

किस उपपुराण का रचयिता कौन मनीषी है और उस मुनि ने किस समयावधि में उस उपपुराण की रचना की है,इसका विवेचन तो इन उपपुराणों के पृथक्-पृथक् विवेचन वाले अध्यायों में ही किया जाएगा किन्तु यहाँ इतना स्पष्ट करना हमारा अभीष्ट है कि विभिन्न उपपुराणों के रचयिता भिन्न-भिन्न ऋषि-मुनि हैं ये किसी एक मनीषी की लेखनी से निःसृत नहीं हैं।

रचनाकाल-अब तक के वर्णन से स्पष्ट होता है कि सभी उपपुराणों का रचना काल एक नहीं है, अलग-अलग कालों में इनकी रचना हुई है।

पुराणों के रचना काल के समान ही उपपुराणों के रचनाकल का विषय भी विवादास्पद है। वास्तविकता तो यह है कि इस विषय में विशेष रूप से कोई

शोध-अध्ययन किया ही नहीं गया है। विष्णु पुराण में उपपुराणों की रचना किये जाने का उल्लेख है- तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च।[१]

इस आधार पर यह मानना युक्ति-संगत प्रतीत होता है कि विष्णु पुराण की रचना के समय तक उपपुराण भी आस्तित्व में आ चुके थे। विष्णुपुराण का रचनाकल प्रथम-शताब्दि ईसवी (लगभग)माना जाता है।[२]

इस आधार पर उपपुराणों की रचनावधि प्रथम शताब्दि ईसवी से कुछ पूर्व की मानी जा सकती है। विष्णु पुराण में किसी उपपुराण का नाम निर्दिष्ट नहीं है किन्तु उपपुराणानि शब्द के प्रयोग से ये तो स्पष्ट है कि उस समय एकाधिक (बहुवचनका प्रयोग होने के कारण) उपपुराणों की रचना हो चुकी थी।

इस सम्बन्ध में एक अन्य तथ्य भी ध्यातव्य है कि विष्णु पुराण की रचना के अनन्तर कई पुराणों की रचना हुई है। इसी कालावधि में ही कई उपपुराण भी लिखे गये हैं। अतः कुछ उपपुराण तो कई पुराणों से भी पूर्ववर्ती हैं, कुछ उपपुराणों का सृजन पुराणों के साथ-साथ हुआ है और कुछ उपपुराण निश्चित रूप से पुराणों के परवर्ती हैं। विन्टरनित्स के मतानुसार उपपुराणों का रचना काल छठी शताब्दि से दसवीं शताब्दि तक हो सकता है।[३] डॉ.वयुलार के मत मे इन ग्रन्थों का रचनाकाल पाँचवी शताब्दी का उत्तरकाल है।[४]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के रचनाकाल के विषय में अनेक तर्क,प्रमाण देकर डॉ.आर.सी.हाजरा लिखते हैं- from all the evidences adduced above

---

[१] विष्णु पुराण,३/६/२४
[२] डॉ. लीलाधर वियोगी विष्णु पुराण पृ.१७
[३] हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर पृ.८०
[४]इण्डियन एण्टिक्वेरी भाग १९पृ.४०८

it is clear that the vishnudharmattrara cannot be dated earlier than 400 A.D.and later then 500A.D.[1]

अर्थात् प्रस्तुत किये गये साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि विष्णुधर्मोत्तर को चौथी शताब्दि से पूर्व की और पाँचवीं शताब्दि के बाद की रचना नहीं माना जा सकता। इसीप्रकार मत्स्यपुराण में चार ऐसे उपपुराणों का उल्लेख हुआ है जो मत्स्यपुराण के रचनाकाल से बहुत पूर्व लोकप्रियता अर्जित कर चुके थे।

वे चार उपपुराण हैं- नरसिंह, नन्दी, साम्ब तथा आदित्य। मत्स्यपुराण का सम्भावित रचनाकाल ५५०-६५० ई. के मध्य स्वीकार किया जा सकता है।[२]

इस दृष्टि से उक्त चारों उपपुराणों की रचना काल ४५०-५५०ई.के लगभग स्वीकार किया जाना उचित होगा। डॉ. हाजरा ने इन उपपुराणों की रचनावधि ६५०-८००ई. के लगभग स्वीकार की है।[३] इसीप्रकार डॉ. हाजरा कूर्मपुराण में उल्लिखित १८ उपपुराणों की रचनावधि ८५०ई. से पूर्व की मानते है।[४]

किन्तु इसी सन्दर्भ में उन्होंने एक महत्वपूर्ण टिप्पणी भी दी है-

Though it must be admitted that in this extensive upapurana literature there are works which are of comparativily later dates,it is by no means wise to suppose that the whole literature cannot lay claim to an early beginning.[5]

---

[1] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.२१२
[2]studies in th upapuranas,volume 1 पृ.१५
[3]studies in th upapuranas,volume 1 पृ.१५
[4] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.१४ ३५
[5]studies in th upapuranas,volume 1 पृ.१४

अपने इसी अभिमत का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ.हाजरा ने अन्यत्र लिखा है-अंग्रेजी में अपने इसी अभिमत का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. हाजरा ने अन्यत्र लिखा है।

"mong the extant upapurans there are some which are much older than many.[1]

श्रीयुत पांडुरंग वामन काणे ने वायु-विष्णु,मार्कण्डेय,मत्स्य तथा कूर्म पुराण का रचनाकाल ३००-६००ई.स्वीकार किया हैं।[२]

इस आधार पर यह अनुमान करना असंगत न होगा कि कई उपपुराणों की रचना भी ३००-६०० ई. से कुछ पूर्व या लगभग इसी कालावधि में हुई होगी। जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है कि महर्षि वेद व्यास के द्वारा पुराणों की रचना के अनन्तर शिव जी के आदेश से ऋषि-मुनियों ने उपपुराणों की रचना की । इस धार्मिक कथा के आधार पर तो उपपुराणों का रचना काल बहुत ही प्राचीन माना जाना चाहिए,किन्तु उक्त आख्यायों को पुराण की रोचक कथा-शैली से अधिक महत्व देना उचित नहीं होगा।

विद्वानों ने साम्ब पुराण का रचना काल ५५०-९५० ई. के मध्य माना है।[३]

नरसिंह पुराण को ८००ई. से पूर्व की रचना माना गया है।[१]

---

[1]studies in th upapuranas,volume 1 पृ.२७

[२] धर्मशास्त्र का इतिहास भाग १ पृ.४२

[3].j.n.farquhar outline of religious literatureof india पृ.२०५

क्रियायोगसार को नवीं शताब्दी के अन्त या दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में रचित स्वीकार किया जाता है।[२]

आदि उपपुराण की रचना अनुमानतः छठी शताब्दी में हुई मानी गयी है।[३]

जैसा कि संकेत दिया जा चुका है, प्रत्येक उपपुराण के परिचय के अन्तर्गत उनके रचनाकाल का भी तर्क एवं साक्ष्य आदि के आधार पर निर्धारण किया जाएगा।

उपपुराणों के रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ सम्भावित निष्कर्ष इस प्रकार दिये जा सकते हैं-

(१) कुछ उपपुराणों की रचना विष्णु पुराण की रचना से पूर्व हो चुकी थी, इनका रचना काल प्रथम शताब्दी ई. के आसपास माना जा सकता है।

(२) जिन चार उपपुराणों का नामोल्लेख मत्स्यपुराण में हुआ है, उनकी रचनावधि सन् ४५० के पश्चात् तथा ६५० से पूर्व मानी जा सकती है।

(३) कतिपय उपपुराणों की रचना सन् ६५० से ८५० के मध्य हुई होगी ।

(४) इन उपपुराणों के अतिरिक्त जिन उपौपपुराणों तथा अतिपुराणों का इस अध्याय में उल्लेख हुआ है सम्भवतः वे ८५० ई. के पश्चात् की रचनाएँ है।

---

[1] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.२३८

[2] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.२६६

[3] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.२९१

(५) कुछ उपपुराण-शीर्षक बाल रचनाए आधुनिक भी हो सकती हैं।

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि हमारा यह रचनाकाल सम्बन्धी मत सम्भावनाओं पर आधारित है, ठोस तर्कों या सुनिश्चित प्रमाणों के अभाव में इदमित्थं के रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता । हाँ, हमारे अनुमान का आधार जो संभावनाएँ हैं, वे भी उपेक्षणीय नहीं हैं,निःशक्त नहीं है।

संख्या एवं नामावली

उपपुराणों की संख्या के सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्ण -जन्म खण्ड में कहा गया है-अष्टादश पुराणानामेवमेवं विदुर्बुधाः। एवंचोपपुराणानामष्टादश प्रकीर्तिताः।[१]

अर्थात् अठारह पुराणों के विषय में जिस प्रकार विद्वज्जन जानते हैं,उसी प्रकार अठारह ही उपपुराण कहे गये हैं। इसी मत का अनेक पुराण-मर्मज्ञ विद्वानों ने भी अनुमोदन किया है।

विद्वद्वर डॉ.श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी इस विषय में कहते हैं -यथा अष्टादश महापुराणानि तथैवाष्टादश उपपुराणान्यपीति निर्विवादम् ।[२]

जैसे अष्टादश महापुराण हैं वैसे ही अष्टादश उपपुराण है- यह निर्विवाद विषय है । इस मत के विपरीत डॉ.कपिलदेव त्रिपाठी का कथन है-महापुराणों की

[१]ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १३१/२
[२] कपिल पुराण प्रस्तावना पृ.२५

संख्या तो प्रायः अठारह ही मान्य है किन्तु उपपुराण तो सौ से भी अधिक हैं। उपपुराणानि तु शताधिकानि सन्ति।[1]

धर्म-ग्रन्थों में अठारह महापुराण, अठारह पुराण , अठारह उपपुराण तथा अठारह अतिपुराणों की चर्चा हुई है।[2]

इनमें से यदि महापुराणों को छोड़ दिया जाए तो शेष ५४ पुराणों,उपपुराणों तथा अतिपुराणों का वर्णन प्राप्त होता है। हमने अठारह उपपुराणों के साथ-साथ अठार उपौपपुराणों का उल्लेख किया है।

महापुराणों के अतिरिक्त इन सभी को ही यदि उपपुराणों की सूचि में सम्मिलित कर लिया जाए,तो यह संख्या ७२ बैठती है उपपुराणों,अतिपुराण,उपौपपुराणों के कई ग्रन्थों के नामों की आवृत्ति हुई है- ऐसे कतिपय ग्रन्थों को भी यदि एक मान लिया जाए तो भी इन सब ग्रन्थों की संख्या (६०) बैठती है अतः उपपुराणों की परम्परा से मान्य संख्या के विपरीत इनकी संख्या (६०) से न्यून नहीं है,थोड़ी अधिक भले ही हो ।

पुराणों, उपपुराणों, औपपुराणों, उपौपपुराणों, निबन्ध-ग्रन्थों ने उपपुराणों की सूचियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इन सबके अनुशीलन से दो बाते अध्यताओं को ज्ञात होती हैं।

प्रथम तो यह कि प्रत्येक ग्रन्थ में दिये गये उपपुराणों के नामों का उल्लेख किया गया है और दूसरी यह कि प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ में दिये गये उपपुराणों में भिन्नता

---

[1]पराशरोपपुराण-परिचय पृ.१५

[2] संक्षिप्त स्कन्दपुराणांक (कल्याण)भूमिका पृ.७

है। यदि इन भिन्न-भिन्न नाम वाले उपपुराणों की सूचि बनाई जाय तो उपपुराणों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाएगी। डॉ. आर. सी हाजरा ने उपने शोध-ग्रन्थ स्टडीज इन द उपपुराणाज में ऐसी २३ सूचियाँ प्रस्तुत की हैं।[१] डॉ. कपिलदेव त्रिपाठी ने पाराशरोपपुराणम् (समीक्षात्मक सम्पादनम्) में २२ सूचियाँ दी गयी हैं।[२] इन सूचियों में दिये गये उपपुराणों के भिन्न-भिन्न नामों के आधार पर उनकी संख्या का परिज्ञान हो सकता है।

सर्वप्रथम कूर्म पुराण में वर्णित उपपुराणों की सूची को आधार बनाकर, अन्य ग्रन्थों में दी गयी सूचियों में जिन-जिन भिन्न उपपुराणों का नामोल्लेख हुआ है, उन्हें रेखांकित किया जाएगा और इसी आधार पर ही उपपुराणों की संख्या का निर्धारण होगाा।

(१-) आद्यं (सनत्कुमारोक्तम्) २ नरसिंहम् ३स्कान्दम् (कुमारोक्तम्) ४ शिवधर्म (नन्दीशभाषितम्)५आश्चर्य (दुर्वाससोक्ततम्) ६ नारदोक्तम् कपिलम् ८वामनम् ९उशनस् १०ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिका १३माहेश्वरम् १४साम्बम् १५ सौर १६पराशर १७ मारीच तथा १८भार्गव।[३]

(२-) नित्याचार प्रदीप ग्रन्थ के अनुसार नरसिंह वाजपेयी द्वारा रचित इस ग्रन्थ की उपपुराण - सूची निम्नलिखित है-सनत्कुमारीयम् २ नारसिंहम् ३ नन्दी पुराणम् ४ शिवधर्म ५ दुर्वासापुराणम् ६ नारदीय पुराणम् ७ कापिलम् ८वामनम्

---

[1] studies in th upapuranas,volume 1 पृ.४-१३

[२] पराशरोपपुराण पुराण-परिचय पृ.१६-२३

[३] कूर्मपुराण -१/१/१०-२०

९ औशनसस १० ब्रह्माण्डम् ११ वारुण१२ कालिका १३ माहेश्वर १४ साम्बम् १५ सौरम् १६ पराशरोक्त१७ मारीचम् भार्गवम्।[१]

इस सूची में तीसरे क्रम पर स्कान्दानम् के स्थान पर नन्दीपुराणम् का उल्लेख हुआ है।

(३)- 'स्मृति-तत्त्व' रधुनन्दन-रचित इस ग्रन्थ के मलमास तत्त्व में दी गयी उपपुराण -सूची इस प्रकार है-१आद्यं सनत्कुमारोक्तम् २नारसिंहम् ३ वायवीयम् (कुमारोक्तम्) ४ शिवधर्म ५दुर्वाससोक्तम् -आश्चर्यम् ६ नारदीयम् ७-८ नन्दीकेश्वरयुग् ९ उशनसेवितम् १० कापिलम् ११ वारुणम् १२ कालिका १३ माहेश्वरम् १४साम्बम् १५ दैवम् १६ पराशरोक्तम् (अपरम्) १७ मारीचम् तथा १८ भास्करम्।

इस तालिका के प्रथम तालिका में तृतीय स्थान पर उल्लिखित स्कान्दनम् के स्थान पर वायवीयम्, ७वें ८वें स्थान पर कापिलम् के स्थान पर नन्दीकेश्वर युगम्, १५ स्थान पर सौर के स्थान पर दैवम् और १८वें स्थान पर भार्गवम् के स्थान पर भास्करम् उपपुराणों का उल्लेख किया गया है। १६ स्थान पर पराशरोक्तम् के साथ अपरम् भी कहा गया जिससे यह ज्ञात होता है कि पहली-दूसरी सूची से भिन्न यह कोई अन्य (अपर) पराशरपुराण है। दूसरी सूची में तीसरे क्रम पर क्योंकि नन्दी पुराण का उल्लेख पहले ही हो चुका है, अतः इस सूची में ७-८वें स्थान पर नन्दीकेश्वर -युगम् -में से एक नन्दीकेश्वर को तो भिन्न पुराण मानना ही पड़ेगा।

---

[१] नित्याचार प्रदीप -पृ.१९

(४)-वीरमित्रोदय-वीरमित्र-कृत के परिभाषा-प्रकाश प्रकरण में उपपुराणों की तालिका निम्न रूप से दी गयी है- १आद्यंसनत्कुमारोक्तम् २ नारसिंहम् ३नान्दम् (कुमारोक्तम्) ४ शिवधर्मम् ५ दुर्वाससोक्तम् -आश्चर्यम् ६ नारदीयम् ७कापिलम् ८मानवम् ९उशनसेवितम् १०ब्रह्माण्डम् ११वारुणम् १२ कालिका १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौम् १६ पराशरोक्तम् (अपरम्) १७ मारीचम् तथा १८ भार्गवम्। इसी सूची के प्रथम सूची में उल्लिखित (तृतीय स्थान पर) स्कान्दनम् के स्थान पर नान्दम् पुराण का उल्लेख हुआ है।

(५)-चतुर्वर्ग चिन्तामणि हेमाद्रि -द्वारा रचित इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में उपपुराणों की सूचि इस प्रकार प्रस्तुत की गयी है-

१आद्यंसनत्कुमारोक्तम् २नारसिंहम् ३ नान्दम् (कुमारोक्तम्) ४ शिवधर्मम् ५ दुर्वाससोक्तम् -आश्चर्य ६ नारदोक्तम् ७कापिलम् ८मानवम् ९उशनसेवितम् १०ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिका १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५सौरम् १६पराशरोक्तम् (प्रथम) १७-१८ भागवतम् द्वयम्।इस तालिका में १६वें क्रम पर दिये गये पराशरोक्तम् प्रथम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह पर्ववर्णित पराशर से भिन्न कोई ग्रन्थ है।

इसी प्रकार १७-१८वें क्रम पर दो भागवत पुराणों का उल्लेख भी प्रथम बार इसी सूची में किया गया है।,अन्यथा अन्य सूचियों में तो मारीच और भार्गव या कहीं-कहीं मारीच और भास्कर पुराणों का ही उल्लेख देखने को मिलता है।

हेमाद्रि कृत चतुर्वर्ग चिन्तामणि के द्वितीय भाग में भी १८ उपपुराणों की एक तालिका दी गयी है किन्तु उस सूची में और प्रथम भाग में दी गयी सूचि में कोई अन्तर नहीं होने से इस सूची को यहाँ उद्धृत नहीं कर रहे हैं।

(६)-शब्दकल्पद्रुम मे उपपुराणों की सूची इस प्रकार उल्लिखित है -आद्यं (सनत्कुमारोक्तम्)२नारसिंहम् ३ वायवीयम् ४शिवधर्मम् ५ दुर्वाससोक्तम् (आश्चर्यं) नारदीयम् ७नन्दीकेश्वर युगम् ८ उशनसेवितम् ९कापिलम् १० वारुणम् ११साम्बम् १२ कालिका १३ माहेश्वरम् १४ पाद्मम् १५ दैवम् १६ पराशरोक्तम् (अपरम्) १७ मारीचम् १८ भास्करम्। इस सूची में वायवीयम् तथा ।पाद्मम् -इन दो उपपुराणों के नाम प्रथम सूची से भिन्न हैं।

इनमें से वायवीयम् उपपुराण का उल्लेख तीसरी सूचि में हो चुका है-पाद्मम् उपपुराण का प्रथम बार इस सूचि में ही उल्लेख हुआ है।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि उपपुराणों के नामों की ये सूचियाँ प्रायः कूर्म पुराण का ही अनुगमन करती हैं। यद्यपि सभी सूचियों में उपपुराणों की संख्या तो १८ ही निर्दिष्ट है किन्तु नामों की भिन्नता के कारण इस संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो गयी है।

उक्त सूचियों के आधार पर उपपुराणों के निम्नलिखित नाम हमारे सम्मुख आए हैं-१ आद्यं (सनत्कुमारोक्तम्) २नारसिंहम् ३स्कान्दम् (कुमारोक्तम्) शिवधर्मम् (नन्दीश भाषितम्) ५ दर्वाससोक्तम् -आश्चर्यम् ६ नारदोक्तम् ७कापिलम् ८वामनम् ९उशनसेवितम् १०ब्रह्माण्डम्११ वारुणम् १२कालिका १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौरम् १६ पराशरोक्तम् १७ मारीचम् १८ भार्गवम् १९नन्दी पुराणम् २० वायवीयम् २१ नन्दीकेश्वर २२ नन्दीकेश्वर-२, २३दैवम्

२४भास्करम् २५ पराशरम् (अपरम्) २६नान्दनम् २७ पराशरोक्तम् प्रथमम् २८भागवत २९ भागवत तथा ३० पाद्मम्।

इस प्रकार १८ उपपुराणों में १२ की वृद्धि होकर यह संख्याा ३० तक पहुँच गयी है। जैसा कि संकेत किया जा चुका है, ये सूचियाँ कूर्म पुराण की सूचि के ही अनुगामिनी हैं फिर भी कूर्म पुराण की सूची से १२ उपपुराणों के नामों की भिन्नता यहाँ प्राप्त हुई है। स्कन्दपुराण में भी उपपुराणों की सूचियाँ विद्यमान हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

(७)-स्कन्द पुराण,सौर संहिता में अष्टादश उपपुराणों की तालिका इस रूप में दी गयी है- आद्यं-सनत्कुमारोक्तम् २नारसिंहम् ३ स्कान्दनम् (कुमारोक्तम्) ४ शिवधर्मम् (नन्दिनोक्तम्) दुर्वाससोक्तम् ६ नारदीयम् ७कापिलम् ८मानवम् ९उशनसेवितम् १०ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिकाख्यम् १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौरम् (सर्वार्थसंचयम्) १६ पराशरम् १७भागवतम् तथा १८ कौर्मम्। यहाँ के स्कन्दम् के स्थान पर नन्दीपुराण,१७वें क्रम पर मारीच के स्थान पर भागवत और १८ भार्गवम् के स्थान पर कौर्मम् उपपुराण का उल्लेख किया गया है।

कौन सा उपपुराण किस महापुराण का सहायक या पूरक है, इस सम्बन्ध में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा परमोपयोगी जानकारी दी गयी है। प्रथम बार यह भी ज्ञात होता है कि सनत्कुमारोक्तम् आद्यं (आदिपुराण) के अतिरिक्त एक अन्य सौर पुराण भी विद्यमान है। एक अन्य सौर पुराण सूर्य द्वारा कथित भी है।

(८)-स्कन्द पुराण-रेवाखण्ड में दी गयी उपपुराणों की सूची इस प्रकार है-

१ सौरम् यहाँ सौर पुराण का उल्लेख दो स्थानों पर हुआ है-प्रथम और १५वें क्रम पर प्रथम क्रम में प्रायः सर्वत्र आद्यं (आदि उपपुराण) का ही उल्लेख होता है।[1]

यहाँ इसे ब्रह्मपुराण का खिल भाग ,शिव कथाज्ञाश्रय तथा संहिताओं वाला बताया गया है- प्रथम संहिता के वक्ता सनत्कुमार तथा दूसरी के वक्ता सूर्य है।

२-नारसिंहम् (पद्मपुराणेन सम्बद्धम्) ३ नन्दीपुराणम् (वैष्णवेन पुराण सम्बद्धम्) ४ शिवधर्मम् (वायु पुराणेन सम्बद्धम्) ५ दौर्वाससम् -(भागवतेन सम्बद्धम्) ६नारदोक्तम् (भविष्य पुराणेन सम्बद्धम्) ७ कापिलम् ८मानवम् ९ उशनसेवितम् १० ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिकाख्यम् १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौरम् (सर्वार्थसंचयम्) १६ पराशरम् १७ भागवतम् तथा कौर्मम्।

यहाँ स्कान्दम् के स्थान पर नन्दीपुराण ,१७वें क्रम पर मारीच के स्थान पर भागवत और १८वें भार्गवम् के स्थान पर कौर्मम् उपपुराणों का उल्लेख किया गया है।

९-स्कन्द पुराण -प्रभास खण्ड में जिन उपपुराणों का उल्लेख हुआ है- वे अधोलिखित हैं।

१ आद्यं (सनत्कुमारोक्तम् २ नारसिंहम् ३ स्कान्दम् ४ शिवधर्मम् ५ दुर्वाससोक्तम् (आश्चर्यम्) ६ नारदोक्तम् ७ कापिलम् ८ मानवम् ९ उशनसेरितम्

---

[1] स्कन्द पुराण - रेवाखण्ड(१/४६-५२)

१० ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिकाख्यम् १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौरम् १६ पराशरोक्तम् १७ मारीचम् तथा १८ भार्गवम्।[1]

स्पष्ट है कि इस सूची में किसी नये उपपुराण के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है।

१०-स्कन्द पुराण की सूत-संहिता के शिव-माहात्म्य खण्ड में भी उपपुरराण की एक तालिका दी गयी है। इस तालिका में उपर्युक्त सूचि वाले नामों की ही आवृत्ति हुई है।

माहेश्वरम् उपपुराण को यहाँ वाशिष्टलिङ्ग कहा गया है और सौर पुराण के साथ महद्भुतम् विशेषण का प्रयोग हुआ है। यह भी संभव है कि कोई अन्य -महाद्भुत पुराण भी विद्यमान रहा हो , किन्तु यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता।[2]

स्कन्द पुराण में उल्लिखित सूचियों में -मानवम् ,वशिष्टलिङ्गम् ,सौरम् (सनत्कुमारोक्तम्) सौरम् (सूर्य भाषितम्) नन्दा,तथा कौर्मम् ये छह नये नाम आये है।

पूर्व -वर्णित ३० उपपुराणों की सूचि में ६ पुराणोंकी वृद्धि हो जाने से अब तक उपपुराणों की संख्या ३६ हो जाती है।

११- गरुण पुराण में दी गयी उपपुराणों की सूची में कोई नया नाम उल्लिखित नहीं है। वशिष्टलिङ्ग को माहेश्वरम् तथा सौर पुराण को महाद्भुतम् कहा गया है।[3]

---

[1] स्कन्द पुराण -प्रभास खण्ड(१/२१/१-१५)
[2] स्कन्द पु. शिव-माहात्म्य खण्ड(१/१३/१८)
[3] गरुण पुराण (१/२२३/१७-२०)

१२-पद्मपुराण, पातालखण्ड में वर्णित सूची में तृतीय स्थान पर स्कान्दम् के स्थान पर नारदीय, ५वें स्थान पर नारदीयम् (अन्यम्) ९वें क्रम पर ब्रह्माण्डम् (अपरम्) तथा १८वें क्रम पर कौर्मम् उपपुराणों का उल्लेख हुआ है।

इस सूची से दो नये नाम सम्मुख आये हैं-नारदीयम् (अन्यम्) तथा ब्रह्माण्डम् (अपरम्) अब तक की १२ सूचियों से उपपुराणों की संख्या ३६+२=३८ हो जाती है।[१]

कतिपय उपपुराणों में भी उपपुराणों की सूचियाँ दी गयी हैं। आगामी पृष्ठों में इसी सम्बन्ध में चर्चा की जा रही है।

१३- देवी भागवत में अधोलिखित उपपुराणों का उल्लेख हुआ है-

१-सनत्कुमारोक्तम् २ नारसिंहम् ३ नारदीयम् ४शिववुराणम् ५दौर्वाससम् ६कापिलम् ७मानवम् ८ औशनसम् ९ वारुणम् १० कालिका ११ साम्बम् १२ नन्दिकृतम् १३ सौरम् १४ पराशर-प्रोक्तम् १५ आदित्यम् (अतिविस्तरम्) १६ माहेश्वरम् १७ भागवत १८ वाशिष्टम् (सविस्तारम्)[२] इस तालिका में वशिष्टलिङ्ग को माहेश्वरम् से भिन्न एक पृथक पुराण कहा गया है और अति-विस्तृत से यह विदित होता है कि यह वाशिष्टम् कोई भिन्न पुराण है जो वाशिष्टलिङ्ग से अधिक विस्तृत है। १५वें क्रम पर इसमें आदित्यपुराण का नाम आया है जो सौर का ही अपर नाम प्रतीत होता है।

---

[१] पद्मपुराण ,पातालखण्ड(१११/९४-९९)

[२] देवी भागवत[२] (१/३/१३-१६)

(१४)-बृहद्धर्मपुराण में दी गयी उपपुराणों की सूची अत्यन्त महत्वपूर्ण है यह तालिका इस प्रकार है- १ आदिपुराणम् २ आदित्यम् बृहन्नारदीयम् ४ नारदीयम् ५नन्दीश्वर पुराणम् ६बृहन्नन्दीश्वर पुराणम् ७ साम्बम् ८ क्रियायोग सारः ९ कालिका १० धर्मपुराणम् ११विष्णुधर्मोत्तर पुराणम् १२ शिवधर्म पुराणम् १३ विष्णुधर्मपुराणम् १४ वामनम् १५ वारुणम् १६ नारसिंहम् १७ भार्गवम् तथा १८ बृहद्धर्मपुराणम्। इस तालिका में धर्मम्, बृहन्नारदीयम्, बृहद्धर्मम्, विष्णुधर्मम्, बृहन्नन्दीश्वर, क्रियायोगसार तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराणम् ये सात नये नाम सम्मिलित हैं।[1]

(१५)- पराशरोपपुराण बृहदौशनस पुराण के विन्ध्य माहात्म्य (अ.४)की सूचियों में कहीं-कहीं क्रम में अन्तर होते हुए भी उपपुराणों के नाम समान रूप से उल्लिखित हैं। वीरमित्रोदय के परिभाषा प्रकाश की दूसरी पुराण सूची ,जो ब्रह्म वैवर्तपुराणानुसारी है- में ८वें क्रम पर शौक्रम् नाम से एक नये उपपुराण का उल्लेख किया गया है। औशनस के स्थान पर शुक्र का प्रयोग किया गया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शुक्राचार्य को ही उशना ऋषि भी कहा गया है। अतः यह औशनस पुराण का ही नामान्तर मात्र प्रतीत होता है।[2]

१६)- भक्ति रत्नाकर की उपपुराण सूची भी ब्रह्मवैवर्त पुराण का अनुसरण करती है। इसमें भी ८वें क्रम पर औशनस के स्थान पर शौक्रम् उपपुराण का नामोल्लेख हुआ है जो औशनस का नामान्तर है,कोई भिन्न पुराण नहीं ।

[1] बृहद्धर्मपुराण (१/१५/२३-२६)

[2] पराशरोपपुराण (१/२८-३१)

(१७)- एकाम्रपुराण की उपपुराण सूची अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें क्रमशः इन उपपुराणों का उल्लेख किया गयाा है-

१-बृहन्नारसिंहम् २ बृहद्वैष्णाव ३ गारुणम् ४ बृहन्नारदीयम् ५ नारदीयम् ६ प्रभासकम् ७लीलावती पुराणम् ८ देवी पुराणम् ९कालिका पुराणम् १०आखेटक पुराणम् ११बृहन्नन्दि पुराणम् १२ नन्दिकेश्वर पुराणम् १३ एकाम्र पुराणम् १४ एक पाद पुराणम् १५ लघुभागवतम् १६ मृत्युञ्जय पुराणम् १७ आंगिरसोक्तम् १८ साम्बम्।[1] इस सूची में नारदीयम् कालिका पुराण तथा साम्ब पुराण को छोडकर शेष १५ नये उपपुराणों का नामोल्लेख किया गया है। पराशरोपपुराण का नाम इस सूची में नहीं है । इस सूची के नामों के साथ उपपुराणों की संख्या (४६+१५) ६१ हो जाती है।

१८ वारुण उपपुराण में उपपुराणों की क्रमिक तालिका इस प्रकार दी गयी है-

१आद्यं (कुमार-कथितम्) २ नृसिंहम् ३ नारदीयकम् ४ वाशिष्ठलिङ्गम् ५मारीचम् ६नन्दाख्यम् ७ भार्गवम् ८ माहेश्वरम् ९औशनसम् १० आदित्यम् ११ गणेशकम् १२ कालीयम् १३ कपिल १४ दौर्वासम् १५ शिवधर्मकम् १६ पराशरकथिम् १७ साम्बम् १८वारुणम् । इस सूची में गणेश उपपुराण नाम से एक नये पुराण का परिज्ञान होता है। इन सभी सूचियों से यह ज्ञात होता है कि उपपुराणों की संख्या ६२ है।[2]

---

[1]एकाम्रपुराण (१/२०-२३)

[2] वारुण उपपुराण (अ.१)

इन सूचियों के अतिरिक्त डॉ.आर.सी. हाजरा ने मधुसूदन सरस्वती द्वारा लिखित प्रस्थान भेद में उल्लिखित सूची को भी उद्धृत किया है। वह तालिका इस प्रकार है-

१ आद्यं (सनत्कुमारेण प्रोक्त) २ नारसिंहम् ३ नन्दी ४ शिवधर्म ५ दौर्वासम् ६ नारदीय ७कालिकाम् ८ मानव ९ उशनसेरितम् १० ब्रह्माण्ड ११ वारुण १२ कालीपुराण (वशिष्ठोक्त) १३ वाशिष्ठलिङ्ग अथवा माहेश्वर १४ साम्ब पुराण १५ सौरम् (महाद्भुतम्) १६पराशर १७ मारीच तथा १८ भार्गव।[१]

यह स्पष्ट है कि इस सूची में किसी नये उपपुराण का नामोल्लेख नहीं है।

इन सभी सूचियों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इनमें से कुछ सूचियों में तो समान नामों की ही आवृत्ति हुई है किन्तु अनेक सूचियों में उपपुराणों के भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। यह भी देखा गया है कि एक ही उपपुराण किसी-किसी सूची में भिन्न नाम से ही उल्लिखित है किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उपपुराणों की संख्या १८ से अधिक है। डॉ.हाजरा के शब्दों में The above lists supply us with the titles of many more upapurans than eighteen.[2]

इस सन्दर्भ में डॉ. हाजरा ने लिखा है-Following the tradition of the mahapurans,or those opinion tries to limit the number of the upapurans rigidly to eighteen even in those cases where the promuilgators of such opinion are fully conscius of the

---

[1]studies in the upapuranas,volume1 पृ.१३
[2] studies in the upapuranas,volume1 पृ. २-३

existemce of larger number, but whilw in the enumerations of the purans there is almost complete agreement with regard to the titles,this is by no means the case with the titles of the upapurans.

अपने इस मत की पुष्टि के लिए डॉ. हाजरा ने बृहद्धर्मपुराण का यह उद्धरण प्रस्तुत किया है-

अन्याश्च संहिताः सर्वाः मारीच कपिलादयः।
सर्वत्र धर्मकथने तुल्य सामर्थ्यमुच्यते।।[१]

बृहद्धर्मपुराण में १८ उपपुराणों के नामोल्लेख के अनन्तर उपर्युक्त श्लोक प्रस्तुत किया गया है। जिसका तात्पर्य है कि उक्त १८ उपपुराणों के अतिरिक्त मारीच, कपिल आदि अन्य उपपुराण भी धर्म कथन की दृष्टि के समान सामर्थ्य वाले हैं।

om an examination of a large number of works,especially of the sanskrit literautre,we have been able to collect the names of more than one hundred upapurans including those mentioned in the above lists.[2]

इसी सन्दर्भ में हम यहाँ एक और तथ्य की ओर संकेत करना चाहते हैं । हमने औपपुराण तथा अतिपुराणों के १८-१८ नामों का उल्लेख किया है। इनमें से बहुत से नाम उपर्युक्त सूचियों में नहीं हैं। जैसे औपपुराणों में वर्णित सूर्य पुराण,महाभागवत पुराण तथा पशुपति पुराणों के नाम इन सूचियों में नहीं हैं।

[१] बृहद्धर्मपुराण (अ.१/१५-२७)

[2] studies in the upapuranas,volume1(foot note) पृ. १३

इसी प्रकार अतिपुराणों के अन्तर्गत उल्लिखित कार्तव ,ऋजु,गर्ग,चण्डी तथा लक्ष्मी पुराणों का भी उल्लेख इन सूचियों में नहीं हुआ।

इसी अध्याय में उल्लिखित ३१उपपुराणों में यदि इन ८ को भी जोड़ दिया जाय तो उपपुराणों की संख्या ३९ हो जाती है।

(१८) महापुराणों के समान १८उपपुराणों का उल्लेख भी धार्मिक ग्रन्थों में प्राप्त होता है। उनके नाम इस प्रकार हैं-

(१) बृहद्विष्णु (२) शिवउत्तरखण्ड (३) लघुबृहन्नारदीय (४) मार्कण्डेय (५) वह्नि (६) भविष्योत्तर (७) वाराह८ स्कन्द (९) वामन (१०) बृहद्वामन (११) बृहन्नमत्स्य (१२) स्वल्पमत्स्य (१३) लघुवैवर्त तथा (१४) भविष्य प्रथम (१५) भविष्य द्वितीय (१६) भविष्य तृतीय (१७) भविष्य चतुर्थ तथा (१८) भविष्य पञ्चम।[१]

इन पुराणों की नामावली का स्रोत क्या है, ये प्रामाणिक भी हैं या नहीं ये आधुनिक युग में रचित है या प्राचन - इन प्रश्नों का हमारे पास कोई प्रामाणिक उत्तर तो नहीं है किन्तु इनमें से कुछ पुराणों का नामोल्लेख तो उपपुराणों की सूचियों में प्राप्त भी हुआ है। इनमें से ८-१० पुराणोां का उल्लेख उक्त सूचियों में प्राप्त नहीं है। यदि इन सभी नामों की उपपुराणों की सूची में गणना की जाय तो उपपुराणों की संख्या ८० से भी अघिक हो जाती है।

[१]संक्षिप्त स्कन्द पुराणांक (कल्याण)पृ७

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि १८ महापुरराणों के समान भी १८ उपपुराणों की मान्यता भी इतनी प्रबल है कि प्रत्येक विद्वान् -ग्रन्थकार ने ,उपपुराणों की गणना करते हुए सदा उनकी संख्या १८ ही रखी है। १८ की संख्या के इस कठोर अनुशासन के होते हुए भी शोधों का परिणाम यह है कि उपपुराणों की संख्या ८० से भी अधिक है। उपपुराणों की संख्या ८० के लगभग स्वीकार की जा सकती है।

नामावली तथा वर्गीकरण

अब तक विभिन्न सूचियों से जिन उपपुराणों के नाम हमारे सम्मुख आये हैं उनकी नामावली प्रस्तुत की जा रही है।यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि अष्टादश महापुराणों के अतिरिक्त जितने भी पुराण ,उपपुराण औपपुराण, उपौपपुराण, तथा अतिपुराण नाम से ज्ञात ग्रन्थ हैं, उन सबको उपपुराण मानकर भी यहाँ इनकी सूची दी जा रही है।

उपपुराणों की तालिका इस प्रकार है

(१) आद्यं (सनत्कुमारोक्तम्) २ नारसिंहम् ३ स्कान्दम् (कुमारोक्तत्) ४ शिवधर्म (नन्दीशभाषितम्) ५ दुर्वाससोक्तम् - आश्चर्यं ६ नारदोक्तम् ७ कापिलम् ८ वामनम् ९ उशनसेवितम् १० ब्रह्माण्डम् ११ वारुणम् १२ कालिका १३ माहेश्वरम् १४ साम्बम् १५ सौरम् १६ पराशरोक्तम् १७ मारीचम् १८भार्गवम् १९ नन्दिपुराण २० वायवीयम् २१ नन्दिकेश्वर-१ २२ नन्दिकेश्वर-२ २३ दैवम् २४ भास्करम् २५ पराशरम् (अपरम्) २६ नान्दम् २७ पराशरोक्तम् (प्रथम) २८ भागवत-१ २९ भागवत-२,३० पाद्म ३१ मानवम् ३२ वाशिष्ठलिङ्ग ३३ सौर(सनत्कुमारेणोक्तम्) ३४ सौर (सूर्य द्वारा प्रोक्त०) ३५ नन्दी ३६ कौर्मम् ३७ नारदीयम् (अन्यम्) ३८ ब्रह्माण्डम् (अपरम्) ३९

वाशिष्ठलिङ्ग ४० धर्मम् ४१ बृहन्नारदीय ४२ बृहद्धर्म ४३ विष्णुधर्म ४४ बृहन्नन्दीश्वरम् ४५ क्रियायोगसार ४६ विष्णुधर्मोत्तर ४७ बृहन्नारसिंहम् ४८ बृहद्वैष्णवम् ४९ गारुणम् ५० बृन्नारदीयम् ५१ प्रभासकम् ५२ लीलावती पुराणम् ५३ देवी पुराणम् ५४ आखेटक पुराण ५५बृहन्नन्दिपुराण ५६ नन्दिकेश्वर पुराणम् ५७ एकाम्र पुराणम् ५८ मृत्युञ्जय पुराणम् ५९ आंगिरसोक्तम् ६० गणेश पुराणम् ६१ सूर्य पुराणम् ६२ महाभागवत पुराणम् ६३ पशुपति पुराणम् ६४ कार्तव ६५ ऋजु ६६ गर्ग ६७ चण्डी ६८ लक्ष्मी ६९ बृहद्विष्णु ७० शिवउत्तरखण्ड ७१ लघु बृहन्नारदीय ७२ मार्कण्डेय ७३ वह्नि ७४भविष्योत्तर ७५ वराह ७६ बृहद्वामन ७७बृहन्नमत्स्य ७८ स्वल्पमत्स्य ७९ लघुवैवर्त तथा ८०-८४ पाचँ भविष्य ८५ हरिवंश पुराण।

कतिपय उपपुराणों के नाम -साम्य या आवृत्ति के कारण यह संख्या कुछ न्यून भी हो सकती है किन्तु उपपुराणों की संख्या ८० के आस-पास तो स्वीकार करनी ही होगी। चाहे डॉ.हाजरा के निष्कर्ष के अनुसार ये शताधिक न हो।

महापुराणों के समान ही उपपुराणों का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। पुराणों का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इनका वर्गीकरण ४ रूपों में किया है। मत्स्य पुराण के अनुसार इन्हें सात्विक,राजस,तामस तथा संकीर्ण इन चार वर्गो में रखा गया है-

सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यधिकं ब्रह्मणोविदुः।।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते।।[१]

[१]मत्स्य पुराण अ.५३/३८-३९

जिन पुराणों में प्रधान-रूप से विष्णु का माहात्म्य वर्णित है वे सात्विक जनमें ब्रह्मा तथा अग्नि देवता का प्रमुख तया वर्णन हुआ है, वे राजस जिनमें शिव की महिमा का गायन अधिक हुआ है वे तामस तथा सरस्वती और पितरों के माहात्म्य से युक्त पुराण संकीर्ण कहलाते हैं।

इस प्रकार देवता -विशेष के माहात्म्य के आधार पर महापुराणों को सात्विक,राजस, तामस तथा संकीर्ण चार वर्गों में विभाजित किया गया है।

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में अष्टादश महापुराणों का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है-

मात्स्यं कौर्मं तथा लैगं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध में।।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुणं च तथा पाद्मं वाराहं शुभ -दर्शनम् ।।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभाानि वै।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेय तथैव च।।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध में।।[१]

मत्स्य,कूर्म,लिङ्ग,शिव,स्कन्द तथा अग्नि- ये छह पुराण तामस कहे गये हैं। विष्णु, नारद, भागवत, गरुण, पद्म तथा वाराह पुराणों को सात्विक पुराण

[१]पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ.१६३/२१-२४

जानना चाहिए। ब्रह्माण्ड,ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन तथा ब्रह्म-ये पुराण राजस कहे जाते हैं। क्योंकि महापुराणों की संख्या निश्चित है, अतः इनका वर्गीकरण करना अधिक दुष्कर नहीं रहा होगा। यही उनका परम्परागत वर्गीकरण मान्य है। स्पष्ट ही इस वर्गीकरण का आधार विष्णु की सात्विक देवता के रूप में ब्रह्मा को राजस देवता और शिव को तामस देवता के रूप में मान्यता रही है किन्तु वर्तमान विद्वान् वैष्णवों की श्रेष्ठता के प्रतिपादन से प्रेरित इस वर्गीकरण को अवैज्ञानिक मानते हैं।[१]

महापुराणों के समान उपपुराणों का वर्गीकरण इतना सहज नहीं माना जा सकता एक तो उपपुराणों की संख्या की अधिकता के करण इनका श्रेणी-बन्धन दुष्कर-सा प्रतीत होता है। दूसरे,ये उपपुराण दीर्घ कालावधि में लिखे गये हैं,इस दृष्टि से भी कोई व्यावहारिक एवं सर्वमान्य वर्गीकरण संभव नहीं था ।

तीसरे अनेक उपपुराणों की अलभ्यता -अनुपलब्धि के कारण भी यह जान पाना शक्य नहीं था कि किस उपपुराण का प्रतिपाद्य क्या है। इन सब कारणों से उपपुराणों का सर्वमान्य वर्गीकरण नहीं हो पाया।

शाक्त उपपुराण

सौर,शाक्त,शैव,वैष्णव तथा गाणपत्य। कतिपय उपपुराणों में धर्म तथा पूजा आदि का भी वर्णन हुआ है। ऐसे उपपुराणों में स्मृति-ग्रन्थों का अनुसरण करते हुए धर्म का ,सदाचार का,नीति का, मानव के कर्तव्यों का,विधि-निषेधों का

---

[१]आ.बलदेव उपाध्याय,पुराण विमर्श,पृ.९६

वर्णन हुआ है-ऐसे उपपुराणों को एक पृथक् वर्ग में स्थान देना होगा। इन्हें स्मृत्याधारित उपपुराणों या धर्म शास्त्र कहना अधिक उपयुक्त होगा।

कई विद्वानों ने ऐसे ग्रन्थों को पुराणों (उपपुराण) के अन्तर्गत रखा है तो कतिपय विद्वानों ने इन्हें धर्मशास्त्र माना है। अतः सौर ,शाक्त ,शैव,वैष्णव,गाणपत्य तथा धर्मशास्त्रीय-उपपुराणों के ये छह रूप माने जा सकते हैं।

स्पष्ट है कि अन्तिम वर्ग को छोडकर शेष ५वर्गो के उपपुराणों में देवता-विशेष का प्राधान्य है। देवता-विशेष के अधिक माहात्म्य के कारण ही यह वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण की पृष्ठभूमि के रूप में ,संक्षेप में उपर्युक्त देवताओं की पूजा-उपासना,उनकी महता की चर्चा करना असंगत न होगा।

उपुराणों -उपपुराणों की लोकप्रियता में बहुत वृद्धि हो जाने पर ,जन -जन में इनका प्रचार-प्रसार हो जाने के फलस्वरूप लोग पुराणों -उपपुराणों में ही अपनी सभी धार्मिक -आध्यात्मिक समस्याओं का भी सामाधान ढूँढने लगे। फलस्वरूप ,पुराणों में ,उपपुराणों में भी ऐसे अनेकानेक विषयों का प्रतिपादन किया जाने लगा जो पहले शास्त्रों के कार्य-विषय रहे थे। विष्णुधर्मोत्तर ,शिव धर्मोत्तर की रचना ासे धर्मशास्त्र तथा पुरराण दोनों रचना-शैलियों का संगम हुआ । बृहद्धर्म पुराण में विष्णु धर्मोत्तर को उपपुराणों की सूची में रखा गया है। शिव धर्मोत्तर को भी उपपुराण ही माना जाता है।

उपपुराणों के वर्गीकरण में हमने इनकी जो धार्मिक पृष्ठ भूमि प्रस्तुत की है , इसका अभिप्राय यही स्पष्ट करना है कि उपपुराणों में वे ही सब विषय

प्रतिपादित हुए हैं जिनका वर्णन पुराणों में हुआ है। अष्टादश पुराणों में वर्णित का कहीं संक्षेप में तो कही विस्तार से वर्णन उपपुराणों में किया गया है। उपपुराणों के इस वर्गीकरण के सन्दर्भ में पद्मपुराण के उत्तर खण्ड से हम यहा एक उद्धरण देना उपयुक्त समझते हैं। श्रीकृष्ण कहते है-

सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा।।[१]

अर्थात् सूर्य,शिव,गणेश,विष्णु और शक्ति के उपासक ,सभी मुझको ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षा का जल सब ओर से समुद्र में ही जाता है, वैसी ही इन पाँचों रूपों के उपासक मुझे ही प्राप्त करते हैं। इस उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं - (१) पद्मपुराण के समय तक भारतीय धर्म-साधना का विकास हो चुका था- त्रिदेव की अवधारण के अनन्तर इस समय तक पञ्चदेवोपासना का प्रचलन हो चुका था। उपपुराणों का वर्गीकरण स्पष्ट ही पञ्चदेवोपासना के प्रचलन एवं विकास का द्योतक माना जा सकता है। २ सम्प्रदायिक सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता का, जो हिन्दू-धर्म का, हिन्दू संस्कृति का मूलाधार माना गया है, उसका सुन्दर एवं आदर्श रूप पद्मपुराण में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उपपुराणों में भी भारत की इसी सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है।

उपपुराणों की प्राचीन सूचियों में हेमाद्रि कृत चतुवर्ग चिन्तामणि के प्रथम भाग में १७-१८वें क्रम पर भागवत द्वयम का उल्लेख हुआ है। स्पष्ट ही यह लघु

---

[१] पद्मपुराण,उत्तरखण्ड,अ.९०/६३

भागवत तथा महाभागवत का ही उल्लेख है। इसी ग्रन्थ के दूसरे भाग की सूची में भी १७-१८वें क्रम पर भागवतद्वय का नामोल्लेख हुआ है।[१]

में १८वें क्रम पर भागवतम् उपपुराण का नाम आया है।[२] इसी प्रकार देवीभागवत (२) की सूची में भागवतम् उपपुराण का नामोल्लेख १७वें क्रम पर हुआ है। देवीपुराण का नामोल्लेख एकाम्रपुराण (३) की सूची में ८वें क्रम पर देखा जा सकता है।[३]

देवीपुराण के विषय में डॉ. आर.सी.हाजरा लिखते हैं-though,as we shall see presently,the devi puran is a work of great importance from different points of view , it has not yet been edited critically, nor is there a single edition printed in devaagri characters.[4]

इसी लिए डॉ.हाजरा ने बंगवासी प्रेस कलकत्ता से बंगला अक्षरों में प्रकाशित देवीपुराण का उपयोग किया है। इन्होंने यह उल्लेख सन् १९६३ में किया था। इस समय गीताप्रेस गोरखपुर से कल्याणके विशेषांक के रूप में देवीपुराण उपलब्ध है जो जनवरी २००५ में ही प्रकाशित हुआ है। देवीपुराण को ही यहाँ महाभागवत भी कहा गया है।उपर्युक्त उपपुराण -सूचियों के अनुशीलन से यह आभास मिलता है कि देवीपुराण तथा महाभागवतोपपुराण पृथक्-पृथक् ग्रन्थ हैं। किन्तु इन ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवीपुराण तथा

---

[१] स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड(१)

[२] देवीभागवत १/३/१३-१६

[३] एकाम्रपुराण अ.१/२२

[4] studies in the upapuranas द्वितीय खण्ड पृ.३५

महाभागवतोपपुराण एक ही ग्रन्थ के दो नाम मात्र हैं।देवीपुराण के समान ही महाभागवत उपपुराण भी प्रकाशित-रूप में उपलब्ध है। नवशक्ति प्रकाशन ,वाराणसी से आचार्य मृत्युञ्ज त्रिपाठी के सम्पादकत्व में सन् १९९८ में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इन दोनों में ८१-८१ अध्याय हैं।

प्रत्येक अध्याय की श्लोक-संख्या भी समान है। समूचे ग्रन्थ में एक भी श्लोक भिन्न नहीं है । देवीपुराण के प्रथम अध्याय से हम यहाँ तीन श्लोक उद्धृत कर रहे हैं-

एकदा नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः।
पप्रच्छुर्मुनिशार्दूल सूतं वेदविदां वरम्।।
पुराणं साम्प्रतं ब्रूहि स्वर्ग मोक्ष सुखप्रदम्।
विस्तृतं परमं यत्र देव्यामाहात्म्यमुत्तमम्।।
जायते नवधा भक्तिर्यस्य श्रवणेन वै।
दिव्यज्ञान विहीनानां नृणामपिमहामते।।[1]

अब यहाँ महाभागवत उपपुराण के प्रथम अध्याय के ५,६,७ वे श्लोक अवतरित किये जा रहे है-

एकदा नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः।
पप्रच्छुर्मुनिशार्दूल सूतं वेदविदां वरम्।।
पुराणं साम्प्रतं ब्रूहि स्वर्ग मोक्ष सुखप्रदम्।
विस्तृतं परमं यत्र देव्यामाहात्म्यमुत्तमम्।।
जायते नवधा भक्तिर्यस्य श्रवणेन वै।
दिव्यज्ञान विहीनाना नृणामपिमहामते।।

[1] देवीपुराण अ.१श्लो.५.६.७

इसी प्रकार किसी भी अध्याय के किसी भी श्लोक को हम इन दोनों ग्रन्थों में एक समान पाते हैं।हम यहाँ महाभागवत उपपुराण के अन्तिम अध्याय (८१वाँ अध्याय) के दो श्लोक उद्धृत कर रहे हैं-

य इदं परमाख्यानं श्रावयेद्विष्णु सन्निधौ।
सद्भभक्तत्या जैमिने तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात्।
अप्यनेकशतं कोटिजन्मान्तर सुसञ्चितम्।
एकदाकर्ण्य सन्त्यज्य पापं मोक्षमवाप्नुयात्।।[१]

अब देवी पुराण के इसी अध्याय के इन्हीं दो श्लोको के साथ समानता के लिए उन्हें यहाँ उद्धृत किया जा रहा हैं-

य इदं परमाख्यानं श्रावयेद्विष्णु सन्निधौ।
सद्भभक्तत्या जैमिने तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात्।
अप्यनेकशतं कोटिजन्मान्तर सुसञ्चितम् ।
एकदाकर्ण्य सन्त्यज्य पापं मोक्षमवाप्नुयात्।।

इन उद्धरणों तथा उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवी पुराण तथा महाभागवत पुराण -एक ही पुराण के दो नाम हैं, वे भिन्न-भिन्न ग्रन्थ नहीं हैं।

देवी पुराण अथवा महाभागवत उपपुराण की कथा शिव-नारद के संवाद के रूप में वर्णित है। इसी कथा को सुनाने के लिए महामुनि जैमिनि भगवान् वेदव्यास से प्रार्थना करते हैं।महर्षि वेदव्यास के तपस्या से प्रसन्न होकर देवी भगवती प्रसन्न होती है और वेदव्यास जी को देवी पुराण का दर्शन कराती हैं। वेदव्यास जैमिनि के संवाद-रूप में वर्णित यहीं कथा नैमिषारण्य में सूत जी शौनक आदि ऋषियों को सुनाते हैं। यही इस पुराण की वक्ता-श्रोता परम्परा है।

---

[१] महाभागवत उपपुराण ८१वाँ अध्याय श्लोक ४६-४७

जैसे कि पहले उल्लेख किया जा चुका है इस पुराण में ८१ अध्याय हैं। अध्यायानुसार इस पुराण की श्लोक-संख्या यहाँ दी जा रही है।

अध्याय	श्लोक संख्या
१	५४
२	५१
३	८०
४	६१
५	५१
६	२७
७	१००
८	१०६
९	९०
१०	१०१
११	११८
१२	४९
अध्याय	श्लोक संख्या
१३	९५
१४	२९
१५	७२
१६	३४
१७	५१

१८	४३
१९	१७
२०	३९
२१	६१
२२	१११
२३	१९४
२४	५१
२५	३७
२६	२६
२७	३१
२८	३८
२९	३५
३०	४८
३१	२७

अध्याय	श्लोक संख्या
३२	२७
३३	२२
३४	१७
३५	५५
३६	८९

३७	२४
३८	५५
३९	४३
४०	५२
४१	२१
४२	७४
४३	९४
४४	३१
४५	३६
४६	३३
४७	७८
४८	२४
४९	६९
५०	१२३
५१	४०
अध्याय	श्लोक संख्या
५२	२३
५३	४८
५४	६६
५५	६३
५६	१०४

५७	५०
५८	५३
५९	३२
६०	३०
६१	६५
६२	२७
६३	७४
६४	२७
६५	४३
६६	५५
६७	१६२
६८	६७
६९	४५
७०	६०

अध्याय	श्लोक संख्या
७१	२५
७२	६३
७३	५१
७४	३५

७५	४६
७६	३८
७७	४९
७८	३१
७९	५०
८०	२५
८१	४७
सम्पूर्ण योग-	=४४८८

अतः स्पष्ट है कि देवीपुराण (महाभागवत उपपुराण) में ८१अध्याय तथा ४४८८ श्लोक हैं। इनमें से कई अध्यायों में अनुष्टुप छन्द से भिन्न बड़े-बड़े छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। यदि इन सबकों अनुष्टुप परिमाण में गिना जाय तो यह श्लोक-संख्या लगभग ५००० होगी।

देवीपुराण (महाभागवत) में शक्ति-साधना का,शाक्त मत का प्रतिपादन अत्यन्त विस्तार से किया गया है। शाक्त मत के प्रतिपादक इस देवी पुराण का अध्यायानुसार सार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। देवी पुराण का प्रारम्भ गणेश-वन्दना से हुआ है-

देवेन्द्रमौलि मन्दार मकरन्दकणारुणाः।

विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवाः।[1]

श्रीगणेश जी के चरण कमल के परागकण जो देवेन्द्र के मस्तक पर विराजमान मन्दार-पुष्प के परागकणों के समान अरुण-वर्ण के हैं। वे विघ्नों का नाश करें। गणेश वन्दना के पश्चात् नारायण ,नर ,भगवती ,सरस्वती तथा व्यास जी को स्मरण किया गया है। तदनन्तर जगज्जननी भगवती को प्रणाम किया गया है-

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्रष्टा हरिः पालकः।

संहरता गिरिशः स्वयं समभवद्धयेया सदा योगिभिः।

यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञा पराम्।

तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्ग प्रदाम्।।[2]

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्मा जी इस जगत के सृजन कर्ता हुए भगवान् विष्णु पालन कर्ता तथा भगवान् शिव संहारकर्ता हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्त्वार्थ जानने वाले मुनिगण जिन्हें परा मूल प्रकृति कहते हैं-स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली, उस जगज्जननी भगवती जी को मै प्रणाम करता हूँ।

इसके पश्चात् सूत-शौनक संवाद के रूप में देवी पुराण (महाभागवत)का प्रारम्भ, देवी पुराण की रचना को लिए वेदव्यास जी द्वारा भगवती दुर्गा की उपासना, भगवती का प्रकट होना तथा अपने चरण-तल में स्थित सहस्रदल -कमल में

[1] देवीपुराण अ.१/१

[2] देवीपुराण अ.१/३

परमाक्षरों में लिखित देवी पुराण का व्यास जी को दर्शन कराना तथा व्यास जी द्वारा देवी पुराण (महाभागवत) की रचना -प्रथम अध्याय में वर्णित है।

तत्पश्चात् महामुनि जैमिनि वेदव्यास जी से देवी दुर्गा के माहात्म्य में से परिपूर्ण शिव जी तथा नारद जी के संवाद -रूप में वर्णित देवीपुराण (महाभागवत) सुनाने की प्रार्थना की गयी है। इसके अनन्तर शिव जी देवी की महिमा का वर्णन करते है-

या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी।

सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च।।[१]

जो शुद्ध सनातन और मूलप्रकृति रूपिणि जगदम्बा हैं,वे ही साक्षात् परब्रह्म है। और वे ही हमारी देवता भी हैं। देवी के द्वारा तीनों देवताओं (ब्रह्मा,विष्णु,महेश) जो सृष्टि रचना, उसके पालन तथा संहार के कार्यो में नियुक्त किये जाने, आदि -शक्ति के गङ्गा आदि पाँच रूपों में विभक्त होने ,ब्रह्मा के शरीर से मनु और शतरूपा के प्रादूर्भाव ,दक्ष की कन्याओं से सृष्टि का विस्तार तथा आदि -शक्ति द्वारा भगवान् शंकर को पत्नी रूप में प्राप्त होने का वर प्रदान किये जाने का वर्णन हुआ है।

चौथे अध्याय में दक्ष प्रजापति की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती शिवा सती नाम से उनकी पुत्री के रूप में जन्म लेती है तथा भगवान शिव और भगवती सती की प्रीति का वर्णन हआ है। सती और भगवान शिव के पाणि-ग्रहण के अवसर पर देवताओं द्वारा उनकी स्तुति तथा पुष्प वर्षा किये जाने का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

[१] देवीपुराण अ.३/

अगले अध्याय में दक्ष प्रजापति शिव के प्रति द्वेषभाव रखने,महर्षि दधीचि द्वारा उनको समझाने तथा शिव की महिमा वताने का वर्णन किया गया है।

इसके अनन्तर सती के साथ भगवान शिव का हिमालय पर आना ,सभी देवताओं के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने ,नन्दी द्वारा हिमालय पर आकर शिव की स्तुति करना और शंकर द्वारा उनको प्रथमाधिपति का पद प्रदान किये जाने का वर्णन हुआ है।

इनके पश्चात् सती और भगवान शिव के आनन्द विहार ,दक्ष द्वारा यज्ञ किये जाने और उस यज्ञ में भगवान् शंकर को निमन्त्रित न करने का निश्चय महर्षि दधीचि द्वारा दक्ष की निन्दा किये जाने का वर्णन है ।

नारद जी सती को प्रेरित करते है कि वह पिता (दक्ष) के यज्ञ में अवश्य सम्मिलित हो। भगवान् शंकर सती अपने पिता दक्ष के घर जाने को अनुचित बताते है, किन्तु सती के विराट-रूप को देखकर वह भयभीत हो जाते है।

सती के द्वारा काली,तारा आदि अपने दस स्वरूपों (दस महाविद्याओं) को प्रकट करने और देवी का यज्ञ -भूमि के लिए प्रस्थान करना वर्णित है। इसके पश्चात् सती के पिता घर पहुँचने माता प्रसूति द्वारा सती के सत्कार किये जाने ,माता द्वारा यज्ञ-विध्वंस के भयंकर स्वप्न को सुनाने ,दक्ष -द्वारा शिव की निन्दा किये जाने का वर्णन किया गया है।

पिता के मुख से पति की निन्दा सुनकर सती क्रुद्ध हो जाती है और एक छाया-सती-रूप में प्रादूर्भाव होता है। इस छाया सती को ,देवी (सती)द्वारा यज्ञ को नष्ट करने का आदेश दिया जाता है।

यज्ञ-विध्वंस के आदेश के पश्चात् मूल सती (देवी) अन्तर्ध्यान हो जाती है और छाया सती यज्ञ-कुण्ड में प्रवेश करती है। यह समाचार सुनकर भगवान् शंकर शोक से आतुर हो जाते है उनके तीसरे नेत्र की अग्नि से वीरभद्र प्रकट होते हैं और वीरभद्र द्वारा दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करके उसके सिर को काट दिया जाता है। ब्रह्मा जी भगवान् शंकर से यज्ञ पूर्ण करने की प्रार्थना करते हैं और भगवान् शंकर की कृपा से दक्ष पुनर्जीवित हो जाते हैं। यज्ञ -विध्वंस के इस प्रकरण में वीरभद्र और भगवान विष्णु के भयंकर युद्ध का अत्यन्त ओज पूर्ण वर्णन किया गया है और प्रसंग-वश शिव और विष्णु की एकता का भी प्रतिपादन किया गया है। विष्णु भगवान् का कथन है कि -अहं शिवः शिवो विष्णुर्भेदो नास्त्यावयोर्यतः।[१] तत्पश्चात् त्रिदेवों द्वारा जगदम्बा की स्तुति, देवी के ,द्वारा भगवान् शंकर को पार्वती-रूप में पुनः प्राप्त होने का आश्वासन ,छाया-सती की देह लेकर शिव के प्रलयंकर नृत्य,भगवान् विष्णु द्वारा सुदर्शन चक्र से सती के अङ्गों को काटे जाने और उनसे इक्यावन शक्तिपीठों के प्रादूर्भाव का वर्णन किया गया है। कामरूप देश में कामाख्या देवी के रूप में,सती का तथा पाषाण-लिङ्ग के रूप में शिव के उपस्थित होने का भी वर्णन इसी अध्याय के अन्त में हुआ है।

तदनन्तर कामाख्या में जाकर शंकर जी के तपस्या करने ,जगदम्बा द्वारा प्रकट होकर शीघ्र ही गङ्गा के रूप में तथा हिमालय और मेना की पुत्री पार्वती के रूप में आविर्भूत होने का तथा उन्हें वर प्रदान करने का वर्णन किया गया है। भगवान् शंकर इक्यावन शक्तिपीठों में प्रधान,कामरूप (कामाख्या)शक्तिपीठ के

---

[१] देवीपुराण अ.१०/४२

माहात्म्य का वर्णन करते है। मेनका के गर्भ के अर्धांश से गङ्गा के प्रकट होने का आख्यान यहाँ वर्णित है।

देवर्षि नारद हिमालय को गङ्गा की महिमा बताते है और ब्रह्मादि देवताओं द्वारा हिमालय से भगवती गङ्गा को ब्रह्मलोक में ले जाने की याचना किये जाने का भी उल्लेख किया गया है। ब्रह्मा जी कमण्डलु में गङ्गा को लेकर स्वर्ग लोक में आते हैं। माता से मिले बिना गङ्गा के स्वर्गलोक में चले जाने पर मैना क्रुद्ध होकर गङ्गा को पुनः जलरूप होकर पृथ्वी लोक आने का शाप देती है।

स्वर्गलोक में देवी गङ्गा से भगवान् शंकर के विवाह होने का भी उल्लेख इस अध्याय में किया गया है। हिमालय और मेना की तपस्या से प्रसन्न होकर आद्याशक्ति पार्वती के नाम से हिमालय के यहाँ प्रकट होती है और उन्हें दिव्य विज्ञान योग का उपदेश प्रदान किया जाता है। इस उपदेश को भगवती गीता का गया है।

इस प्रसंग में हिमालय द्वारा जगदम्बा की स्तुति अत्यन्त प्रभावशाली-रूप में वर्णित है। भगवती गीता में ब्रह्म-विद्या,आत्मा का स्वरूप ,अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि का परित्याग,शरीर की नश्वरता तथा अनाशक्ति योग- इन विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

इन विषयों के साथ-साथ ब्रह्मयोग का उपदेश ,पञ्चभौतिक शरीर ,गर्भस्थ जीव का स्वरूप ,गर्भ में की गई जीव की प्रतिज्ञा ,माया से आबद्ध जीव का गर्भ से बाहर आने पर वास्तविक स्वरूप को भूल जाने तथा विषय-भोगों की दुःख-मूलता तथा देवी जगदम्बा की भक्ति की महिमा का भी वर्णन किया गया है।

भगवती गीता में मोक्ष-योग का वर्णन किया गया है। देवी के स्थूल स्वरूपों में दस महाविद्याओं का वर्णन इन दस रूपों की उपासना से मोक्ष की प्राप्ति तथा अनन्य भाव से जगदम्बा की शरण में जाने का महत्व भी वर्णित हैं।

देवी के दस स्वरूपों (दस महाविद्याओं) के नाम इस प्रकार दिये गये हैं-

महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी बगला छिन्ना महात्रिपुर सुन्दरी।।
धूमावती च मातङ्गी नृणां फलप्रदा।
आसु कुर्वं परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम् ।।[1]

महाकाली,तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी भैरवी बगलामुखी, छिन्नमस्ता, महात्रिपुर सुन्दरी, धूमावती और मातङ्गी नामों वाली-ये मनुष्यों को मोक्षफल प्रदान करने वाली हैं। इनकी परम भक्ति करने वाला निःसन्देह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अगले अध्याय में पार्वती द्वारा हिमालय को तत्त्वज्ञान तथा योग का उपदेश दिया गया है। इसके अनन्तर देवी का सामान्य बालिका की भाँति क्रीडा करना हिमालय द्वारा पार्वती का जन्मोत्सव मनाये जाने,षष्ठी महोत्सव तथा नाम करण-संस्कारादि का वर्णन किया गया है। भगवती गीता के पाठ का माहात्म्य भी बताया गया है। भगवती पार्वती अपने विविध प्रकार की बालोचित क्रीडाओं द्वारा हिमालय तथा मेनका को आनन्द प्रदान करती है और देवर्षि नारद द्वारा देवी के माहात्म्य क वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् सती को पार्वती के रूप में पुनः प्राप्त करने के लिए शंकर भगवान् की तपस्या का वर्णन किया गया है।

[1] देवीपुराण अ.१८/२७-२८

जिस स्थान पर शंकर भगवान तपस्या-रत थे,हिमालय अपनी पुत्री पार्वती तथा पार्वती की दो सखियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचते हैं। हिमालय द्वारा भगवान् शंकर की पूजा-उपासना का वर्णन भी किया गया है।

अपनी चिन्तित माता को पार्वती समझाती हैं- आप मेरे लिए चिन्ता न करें।मैं नित्य आनन्द स्वरूपिणी आद्या प्रकृति हूँ। मुझे वन में अथवा घर में कहीं भी दुःख नहीं है। पार्वती की बातें सुनकर मेनका के मुख से निकला, 'उ- मा'। इसी से पार्वती का उमा नाम विख्यात हो गया। इसके पश्चात् ब्रह्मा जी देवताओं को बताते हैं कि जिस तारकासुर ने तुम्हें इतना पीडित कर दिया है, उसका वध भगवान् शंकर के पुत्र-द्वारा होगा। यह जानकर इन्द्र के द्वारा शंकर भगवान् की तपस्या को भंग करने के लिए कामदेव को भेजने का वर्णन किया गया है। कामदेव वसन्त ऋतु और अपनी पत्नी रति को साथ लेकर हिमालय में भगवान शंकर के आश्रम में पहुँचा, किन्तु शीघ्र ही वह शंकर भगवान की समाधि को भंग नहीं कर पाया। जब कामदेव ने इसके लिए प्रयत्न आरम्भ किया तब शंकर भगवान् ने तृतीय नेत्र की अग्नि ने उसे भस्म कर दिया -

इत्येवं वदतां तेषां हरनेत्रोद्भवोऽनलः।

भस्मसात। कामं सहसा मुनि सत्तम् ।।[1]

मुनि श्रेष्ठ! इस प्रकार उन देवताओं के कहते रहने पर भी भगवान् शंकर जी के तीसरे नेत्र से निकली हुई अग्नि से सहसा ही कामदेव को भस्म कर दिया। इसके पश्चात् भगवती का कालीरूप में भगवान शंकर को दर्शन देने, शंकर द्वारा काली के चरण - कमलों को हृदय में धारण कर उनका ध्यान करने का

---

[1] देवीपुराण अ.२२/११०

वर्णन किया गया है। महादेव के सहस्र नामों के द्वार देवी की स्तुति किये जाने का वर्णन हआ है। इस स्तोत्र को ललित सहस्रनाम स्तोत्र कहा गया है। सहस्रनामों से स्तुति किये जाने पर देवी,महादेव को बताती है कि मैं आपके लिए ही गिरिराज की पुत्रीभाव को प्राप्त हुई हूँ।

मैं आपकी ही अर्धाङ्गिनी हूँ। आपने मेरे लिए दीर्घकाल तक कठिन तपस्या की है, मैं पुनः आपको पतिरूप में प्राप्त करूँगी। इसके पश्चात् पार्वती के अपने कालीरूप को त्याग कर पुनः गौरीरूप में परिणत होने का वर्णन किया गया है। सहस्रामनाम स्तोत्र के पाठ का फल बताते हुए यह प्रकरण समाप्त हुआ है।

इसके अनन्तर भगवान् शंकर पार्वती के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं और मरीचि आदि ऋषि हिमालय के पास पहुँकर अपनी पुत्री पार्वती को भगवान् शंकर को समर्पित करने का परामर्श देते हैं। हिमालय द्वारा इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दिये जाने का वर्णन किया गया है।मरीचि आदि ऋषि विवाह की स्वीकृति का शुभ समाचार सुनाते है। विवाह के लिए वैशाख,शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि निश्चय की जाती है। देवर्षि नारद ब्रह्मादि सभी -देवताओं को विवाह का निमन्त्रण देते है। हिमालय के घर में भी विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो जाती है। भगवान् शंकर के यहाँ सभी देवताओं के आगमन से हर्षोल्लास का वातावरण निर्मित हो जाता है। ब्रह्मा,विष्णु तथा रति के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान शंकर कामदेव को पुनः जीवित करते हैं। ब्रह्मा जी के आग्रह पर भगवान् शंकर विवाह के लिए सौम्यरूप धारण करते है और अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ शिव जी की बारात प्रस्थान करती है। हिमालय के द्वारा बारात का यथोचित स्वागत-सत्कार किया जाता है तथा शिव

पार्वती के मङ्गलमय विवाह के वर्णन के साथ इस प्रसङ्ग के पाठ की महिमा भी बताई गयी है। विवाहोपरान्त शिव-पार्वती के एकान्त-विहार की चर्चा के पश्चात् पृथ्वी का गो-रूप धारण करके देवताओं -सहित ब्रह्मा जी के पास जाने का वर्णन हुआ है।

ब्रह्मा जी पृथ्वी तथा देवताओं को आश्वासन देतें है और शिव-पार्वती के पुत्र कुमार कार्तिकेय के जन्म के सम्बन्ध में बताते हैं। तदनन्तर देवताओं के द्वारा पार्वती की स्तुति की गई है और भगवान् शंकर के तेज से षण्मुख कार्तिकेय के जन्म तथा हर्षोल्लास का वर्णन किया गया है। तदनन्तर कुमार कर्तिकेय तारकासुर के वध के लिए सेना-सहित उद्यत होते है, ब्रह्मा जी उन्हें वाहन के रूप में मयूर तथा अमोघ शक्ति प्रदान करते हैं। कार्तिकेय को देवसेना का सेनापति बनाया जाता है। इसके पश्चात् देवासुर संग्राम में कार्तिकेय और तारकासुर के बीच भीषण युद्ध होता है। कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध किया जाता है। जिसे देव सेना में हर्ष की लहर-सी उठती है। देवताओं द्वारा कार्तिकेय की वन्दना की गयी तथा ब्रह्मा जी के साथ कार्तिकेय अपने माता-पिता के पास कैलास पर्वत पर आते हैं।

इसके पश्चात् भगवान् विष्णु द्वारा पुत्ररूप में माँ पार्वती के स्नेह -वात्सल्य को पाने की अभिलाषा प्रकट की गयी है और महादेवी द्वारा उन्हें यह वर प्रदान किया जाता है- **मत्पुत्रस्त्वं भविष्यति।**

इसके अनन्तर गणेश जी के जन्म की कथा वर्णित है। पार्वती द्वारा अपने उबटन से विष्णु-रूप एक पुत्र उत्पन्न करके उसे नगर-रक्षक के रूप में नियुक्त किया गया है। भगवान् शंकर अनजाने में त्रिशूल द्वारा उस बालक का सिर काट

देते हैं। पार्वती जी पुत्र-वियोग से शोकाकुल हो जाती हैं। भगवान् शंकर एक गजराज का सिर काटकर पुत्र के धड से जोड देते हैं और वह बालक पुनर्जीवित हो जाता है। वहीं बालक गणेश-   पद को प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् गणपति-गणेश के जन्म की इस कथा के श्रवण -पठन आदि के फल का निर्देश हुआ है। इसके पश्चात् रामोपाख्यान प्रारम्भ हुआ है। देवी कात्यायनी की आराधना से रावण तीनो लोकों को जीत लेता है। ब्रह्मा जी के प्रार्थना पर भगवान् विष्णु राम के रूप में अवतरित होने का आश्वासन देते है तथा जगदम्बा द्वारा रावण के बध का उपाय बताया जाता है।

शिव जी द्वारा अपने हनुमान-रूप में पकट होने की बात बताई गई है-

अहं वानररूपेण सम्भूय पवनात्मजः।

साहाय्यं ते करिष्यामि यथोचितमदीरिदम्॥[१]

हे शत्रु सूदन! मैं वानर-रूप में पवन-पुत्र होकर जन्म लूँगा और आपकी यथोचित सहायता करूँगा। विष्णु भगवान् महाराज दशरथ के घर में राम ,लक्ष्मण,भरत,तथा शत्रुघ्न के रूप में अवतरित होते है।

ङङङङ

[१] देवीपुराण अ.३७/५